अमिट कालरेखा

आचार्य शङ्कर की प्रव्रज्या के पच्चीस सौ वर्ष

(अर्वाचीन मत खण्डन)

लेखक

श्री परमेश्वर नाथ मिश्र 'अधिवक्ता'

उच्चन्यायालय, कलकत्ता

एवं

उच्चतम न्यायालय, भारत

प्रकाशक

शङ्कराचार्य परम्परा एवं संस्कृति रक्षक परिषद्

अमिट कालरेखा

आचार्य शङ्कर की प्रव्रज्या के पच्चीस सौ वर्ष
(अर्वाचीन मत खण्डन)

लेखक
परमेश्वरनाथ मिश्र 'अधिवक्ता'

प्रकाशक
शङ्कराचार्य परम्परा एवं संस्कृति रक्षक परिषद्

प्रथमावृत्ति : 1000
तीस रूपये मात्र

मुद्रक—
तारा प्रिंटिंग वर्क्स
वाराणसी

प्रकाशकीय

आज से लगभग 12 वर्ष पूर्व सन् 1988 ई. में अचानक महामण्डलेश्वर स्वामी काशिकानन्द गिरि जी के एक लेख को आधार बनाकर कुछ लोगों ने आदि शङ्कराचार्य के आविर्भाव काल द्वादश शताब्दी वर्ष मनाना प्रारम्भ कर दिया। इस अवसर पर उन्होंने एक पुस्तक "भारतीय अस्मिता और राष्ट्रीय चेतना के आधार जगद्गुरु शङ्कराचार्य" का प्रकाशन भी किया। इसी पुस्तक में स्वामी काशिकानन्द जी का उपर्युक्त लेख प्रकाशित हुआ, जिसमें महात्मा काशिकानन्द जी ने कुल मिलाकर सिद्ध करना चाहा था कि आदि शङ्कराचार्य का काल 788 ई. ही है। महामण्डलेश्वर स्वामी काशिकानन्द जी ने तथाकथित आधुनिक अन्वेषकों के कुछ उथले और दुरभिप्राययुक्त अन्वेषणों को ही अनेक पुष्ट-प्रमाणों और श्रीमदादि शङ्कराचार्य द्वारा स्थापित चारों पीठों की शिष्य परम्पराओं को नजर-अन्दाज करते हुए स्वीकार कर लिया था, संभवतः ऐसा उनके कुछ नया करने के उत्साह अथवा साधुपुरुषोचित हृदय-सारल्य के कारण हुआ होगा।

चारों शङ्कराचार्य पीठों की परम्पराओं के अनुसार* आदिशङ्कराचार्य जी ने युधिष्ठिर शक संवत् 2639 कार्तिक शुक्ल एकादशी के दिन सन्यास ग्रहण किया था अतः वि.सं.2057 उनके सन्यास ग्रहण 2500वाँ वर्ष है।

इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए "श्रीशङ्कराचार्य परम्परा एवं संस्कृति संरक्षक परिषद्" ने आदिशङ्कराचार्य के आविर्भाव काल के सम्बन्ध में कुछ विशिष्ट गवेषणा कर एक ग्रन्थ लिखने का अनुरोध प्राचीन एवं आधुनिक विद्वानों से किया। प्रसन्नता की बात है कि इसी क्रम में परिषद के अध्यक्ष एवं इतिहास, दर्शन के साथ ही साथ विधिशास्त्र के मूर्धन्य विद्वान् श्री परमेश्वरनाथ मिश्र ने व्यापक अनुसन्धान कर एक बृहद् ग्रन्थ का सृजन किया। परन्तु विधि व्यवसाय-गत व्यस्तताओं के कारण अभी तक वे उक्त ग्रन्थ का पुनरीक्षण नहीं कर सके हैं, अतः परिषद् ने उनके उस विशद ग्रन्थ के एक अंश जो कि मुख्यतः महामण्डलेश्वर स्वामी काशिकानन्द जी द्वारा प्रतिपादित आधारभूत तथ्यों के खण्डन में लिखा गया है, पुस्तक के रूप में प्रकाशित करने का निर्णय लिया।

परिषद् का उद्देश्य है कि श्रीमदादिशङ्कराचार्य जैसे महान् व्यक्तित्व के काल के

---

*मात्र शृंगेरी पीठ इससे वर्तमान में असहमत है परन्तु उसकी परम्परा में भी आज से लगभग 50 वर्ष पूर्व के प्राप्त आधारों से इसी मत की पुष्टि होती है।

बारे में फैली भ्रामक धारणाओं का अपनोदन किया जाय और एक सर्वमान्य निष्कर्ष पाया जाय।

अतः इस पुस्तक के माध्यम से हमारी इस विषय में रुचि रखन वाले विद्वानों से प्रार्थना है कि वे ठोस प्रमाणों पर आधारित अपनी विप्रतिपत्ति निम्न पते पर शीघ्र भेजें, जिससे कि आगामी प्रकाशन में उनके विचारों को सम्यक् स्थान दिया जा सके। और इस तरह ऐकमत्य स्थापित कर वर्तमान वि.सं. 2057 को "शङ्कराचार्य सन्यास-पञ्चविंशशती" के रूप में मनाया जा सके।

मन्त्री
श्री शङ्कराचार्य परम्परा एवं
संस्कृति संरक्षक परिषद्
वाराणसी

श्री परमेश्वरनाथ मिश्र 'अधिवक्ता'
अध्यक्ष
श्री शङ्कराचार्य परम्परा एवं संस्कृति संरक्षक परिषद्
204, वृन्दावन काम्पलेक्स
4, अरुणा एपार्टमेण्ट
स्टेशन रोड लिलुआ हावड़ा - 711204
दूरभाष - (033) 645-6669
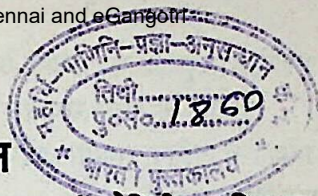
कृतज्ञता ज्ञापन

प्रस्तुत पुस्तक के प्रणयन काल में मैंने शरदापीठ-द्वारका एवं ज्योतिष्पीठ बदरिकाश्रम पीठों के वर्तमान शङ्कराचार्य अनन्तश्रीविभूषित स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती जी महाराज, गोवर्द्धनपीठ-पुरी के वर्तमान शङ्कराचार्य अनन्तश्रीविभूषित स्वामी निश्चलानन्द सरस्वती जी महाराज, शृङ्गगिरिपीठ के वर्तमान शङ्कराचार्य अनन्तश्रीविभूषित स्वामी भारतीतीर्थ जी महाराज के प्रतिनिधि एवं मठ मुद्राधिकारी आचार्य चल्लालक्ष्मण शास्त्री एवं अन्य अनेक महामण्डलेश्वरों तथा अखाड़ों से सम्पर्क किया। उक्त महापुरुषों/महानुभावों से विविध प्रमाण, सूचनायें तथा पुस्तकें प्राप्त हुई जिनमें उपलब्ध विवरणों का सम्यक् उपयोग इस पुस्तक में मैंने किया है। अतः उक्त महापुरुषों /महानुभावों के प्रति मैं अपनी श्रद्धा निवेदित करते हुए विनम्रभाव से अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ । मैं विशेष रूप से उन विद्वानों के प्रति अपनी कृतज्ञता का ज्ञापन करता हूँ जिनकी पुस्तकों के उद्धरणों का इस पुस्तक में उपयोग किया गया है।

इस पुस्तक के पुनरीक्षण में मेरे अग्रज श्री राजेश्वर नाथ मिश्र एवं श्री चन्द्रधर उपाध्याय तथा सतीश कुमार तिवारी ने महत्वपूर्ण सहयोग किया। पुसतक निर्माण के विविध चरणों में मेरे भ्रात्रेयों श्री परंतप मिश्र, श्री भुवनभास्कर मिश्र और श्री राजीव रंजन मिश्र ने सम्यक् सेवा की। मेरे अन्य अग्रज श्री सुमेश्वर नाथ मिश्र के साथ-साथ श्री ओमप्रकाश दूबे, श्री सत्यप्रकाश दूबे, श्री शिवप्रकाश शुक्ल, श्री पलकधारी सिंह एवं श्री कैलाश दूबे ने इस पुस्तक लेखन की अवधि में उत्पन्न व्यति-क्रम काल में मुझे पूर्ण सहयोग प्रदान किया जिससे ग्रन्थ को पूर्णता प्रदान करने में सफलता प्राप्त हुई। मेरी धर्मपत्नी श्रीमती रेखा मिश्र ने तो इस पुस्तक लेखन काल में जो सहयोग प्रदान किया उसे लीलावती एवं भामती की परम्परा के निर्वहन में किया गया कार्य ही कहा जा सकता है। मेरी पुत्रियों कुमारी प्रियंवदा मिश्र तथा कुमारी प्रज्ञा मिश्र और पुत्र श्री प्रतीक मिश्र ने भी किसी न किसी रूप में इस ग्रन्थ के प्रणयन में महत्वपूर्ण योगदान किया। इन सभी लोगों के प्रति मैं कृतज्ञता प्रकाशित करता हूँ।

इस पुस्तक की भमिका लिखने का श्रम करने वाले संस्कृत साहित्य एवं जैन बौद्ध आगमों के ख्यातिलब्ध विद्वान् प्रो. कामेश्वरनाथ मिश्र के प्रति मैं अपनी विशेष कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ क्योंकि अपनी यूरोपीय देशों की यात्रागत व्यस्तताओं के होते हुए भी

उन्होंने इस पुस्तक का सम्यक् अवलोकन कर पुरोवाक् लिखने का अनुग्रह किया।

पुस्तक के अक्षर संयोजन में श्री सुरेश उपाध्याय एवं श्रीमती विजया तिवारी ने अपेक्षा से अधिक सहयोग प्रदान किया अतः उन लोगों के प्रति भी मैं अपनी कृतज्ञता प्रकाशित करता हूँ।

वैशाख शुक्ल पञ्चमी
विक्रम संवत् 2057

परमेश्वर नाथ मिश्र 'अधिवक्ता'
उच्च न्यायालय, कलकत्ता एवं
उच्चतम न्यायालय, भारत

204, वृन्दावन काम्पलेक्स
4, अरुणा एपार्टमेण्ट
स्टेशन रोड लिलुआ हावड़ा - 711204
दूरभाष - (033) 645-6669

विषय प्रवेश

पारम्परिक मान्यता के अनुसार सनातन धर्म के उन्नायक, महान् दार्शनिक, वेदान्त-दर्शन के अद्भुत व्याख्याकार, प्रचण्ड मेधा सम्पन्न शिवावतार भगवान् आदिशङ्कराचार्य का जन्म वर्तमान भारतवर्ष के केरल प्रान्त में एर्णाकुलम् जनपद के कालटी नामक ग्राम में युधिष्ठिर शक संवत् 2631 वैशाख शुक्ल पञ्चमी नंदन वर्ष तदनुसार ईसवी सन् पू. 507 में शिवगुरु तथा आर्याम्बा नामक पिता-माता के घर में हुआ था। कालटी ग्राम केरल के प्रमुख औद्योगिक नगर अलवये से मात्र 10 किलोमीटर दूर है। एर्णाकुलम् से अलवये की दूरी 21 किलोमीटर है। आदिशङ्कराचार्य का कैलाश गमन युधिष्ठिर शक संवत् 2663 कार्तिक पूर्णिमा तदनुसार ईसवी सन् पूर्व 475 में हुआ था।

आर्य समाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द सरस्वती के 'सत्यार्थप्रकाश' के लेखन काल, 1875 ईसवी सन् तक उपर्युक्त पारम्परिक मान्यता निर्विवाद मान्य थी यह 'सत्यार्थप्रकाश' से स्पष्ट होता है। इस मान्यता के विरुद्ध बेलगाम हाईस्कूल के अध्यापक ने 'इण्डियन एण्टीक्वेरी खण्ड 11 पृष्ठ 263 (जून 1882 ई. अङ्क)' में प्रकाशित अपने एक लेख में यह लिखा कि उन्हें बेलगाम के गोविन्दभट्ट हेरलेकर के पास से बाल-बोध प्रकृति की तीन पत्रों की एक पाण्डुलिपि प्राप्त हुई जिसके अनुसार शङ्कराचार्य का जन्म विभव वर्ष कलि संवत् 3889 तथा परलोक गमन कलि संवत् 3921 वैशाख पूर्णिमा तदनुसार ईसवी सन् 778-820 में हुआ था।

'इण्डियन एण्टीक्वेरी खण्ड 16 पृष्ठ 161 (ई० सन् 1887)' में प्रकाशित एक लेख में कालीकट के डब्ल्यू लोगन का अभिमत है कि- ''केरलोत्पत्ति में लिखा है कि आदिशङ्कराचार्य का जन्म 'सफल वर्ष' में हुआ था। यह 'सफ़ल वर्ष' राजा पेरुमल के शासन काल में था। चेरामन पेरुमल ने इस्लाम धर्म अङ्गीकार कर लिया था। 16वीं सदी के उत्तरार्द्ध में लिखी गयी अरबी पुस्तक 'तहफात-ऊल-मुजाहिदीन' में लिखा है कि जफर में एक राजा दफनाया गया था। जफर के निवासियों के अनुसार मालाबार का एक राजा अब्दुल रहीम समीरी जफर में दफनाया गया था। शिलालेख से ज्ञात होता है कि वह 212 हिजरी सन् तुल्य ईसवी सन् 87-28 में जफर जा पहुँचा तथा 216 हिजरी सन् तुल्य ईसवी सन् 831-32 में मृत्यु को प्राप्त हुआ।'' कुरान के अनुसार समीरी अथवा समारियाई का अर्थ 'बछड़े का पूजक' करते हुए लोगन महोदय ने उक्त कब्र को चेरामन

पेरुमल की कब्र बताकर आदिशङ्कराचार्य को उनका समकालीन मानते हुए श्री पाठक द्वारा सुझाये गये काल 788 ई0 से 820 ई0 को आदिशङ्कराचार्य का काल मान लिया जब कि केरलोत्पत्ति के अनुसार उक्त शङ्कराचार्य का जन्म ई0 सन् 400 में हुआ था तथा वे 38 वर्ष तक इस धराधाम पर रहे।

पश्चातवर्ती बौद्ध विद्वान् कमलशील ने आचार्य शङ्कर के भाष्य में उद्धृत कुछ पंक्तियों को दिङ्नाग की पंक्तियाँ बताकर अर्वाचीन मत को और बल दिया जिसका अनुशरण अन्य विद्वानों ने भी किया। अन्त में काशिकानन्द गिरि महोदय ने 'भारतीय अस्मिता और राष्ट्रीय चेतना के आधार जगद्गुरु आद्यशङ्कराचार्य' नामक पुस्तक में प्रकाशित अपने एक लेख 'भाष्यकार आचार्य भगवत्पाद का आविर्भाव समय' में उपर्युक्त अर्वाचीन मतावलम्बियों के अन्वेषणों को समेकित करते हुए भाष्यकार शङ्कराचार्य का आविर्भाव काल 788 ई0 सन् तथा कैलाश गमन काल 820 ई0 सन् प्रामाणिक बताया और अपनी उक्त मान्यता के आधार पर ई0 सन् 1988 में आचार्य शङ्कर के आविर्भाव काल का कथित द्वादश शताब्दी वर्ष समारोह आयोजित किया।

यहाँ यह ध्यान देने योग्य तथ्य है कि पं. बलदेव उपाध्याय द्वारा अनुवादित 'श्रीशङ्करदिग्विजय' के द्वितीय संस्करण की भूमिका में 1967 ई0 में स्वामी प्रकाशानन्द आचार्य महामण्डलेश्वर श्री जगद्गुरु आश्रम, कनखल हरिद्वार ने आचार्य शङ्कर के पारम्परिक आविर्भाव काल युधिष्ठिर शक संवत् 2631 को ही प्रामाणिक माना है।

श्रीशङ्कराचार्य परम्परा एवं संस्कृति रक्षक परिषद् के द्वारा संज्ञान में लाये गये उपर्युक्त विभ्रमकारी मतवादों ने परिषद् से जुडे इस पुस्तक के लेखक को आचार्य शङ्कर के आविर्भाव काल को निश्चित करने के लिये मान्य काल-निर्धारक सिद्धान्तों एवं प्रमाणों के अन्वेषण हेतु उन्मुख किया। इस पुस्तक में पूर्वपक्ष के रूप में उठाये गये अधिकांश प्रश्न महामण्डलेश्वर श्री काशिकानन्द जी के उपर्युक्त लेख से लिये गये हैं। परन्तु आवश्यक प्रश्न जो कि सहज उत्पन्न हो सकते थे उन्हें भी पूर्वपक्ष के रूप में देकर काले बिन्दुओं से चिह्नित कर दिया गया है।

पुरोवाक्

आज उपलब्ध हो रहा भारतीय इतिहास एकाङ्गी एवं आंशिक है। बर्बर आक्रामकों ने हमारी सभ्यता और संस्कृति दोनों को नष्ट-भ्रष्ट कर डाला। मठ, मन्दिर, नगर, आश्रम, हस्तशिल्प, उद्योग, व्यापार तथा समुन्नत वैज्ञानिक उपलब्धियों को छिन्न-भिन्न कर डाला और अनन्त ज्ञान-भण्डार पुस्तकालयों को स्वाहा कर दिया।फलस्वरूप शेष रहे खण्डित अवशेष। इन्हीं खण्ड-खण्ड विकीर्ण भग्नावशेषों पर आधृत हुआ हमारा तथाकथित इतिहास जिसको पुरातात्त्विक उत्खनित सामग्री पूर्णता न दे सकी। पराधीन भारत के गुलाम इतिहासकार पाश्चात्य दिशा-निर्देशों/इङ्गितों के वशंवद रहे। स्वतन्त्र चेतना के साथ इतिहास-लेखन नहीं हो सका। सारा इतिवृत्त राजपरिवारविशेष, नगर विशेष अथव कालखण्डविशेष के ही परिपार्श्व में सिमटा रहा। अखण्डभारत का तारतम्यमय अक्षुण्ण इतिहास समंग्रता की दृष्टि से नहीं लिखा जा सका। ऐसे इतिहासकारों तथा इतिहास-ग्रन्थों की कुछ संख्या रही भी । आदिकाल से लेकर आज तक भारत के सांस्कृतिक वृत्त तो नगण्य ही है। विश्वगुरु भारत का,एक भी ऐसा ग्रन्थ दुर्भाग्य से नहीं लिखा जा सका जो प्राचीनतम भारत से प्रारम्भ कर आज तक की साहित्यिक, धार्मिक, कलात्मिका एवं सांस्कृतिक प्रवृत्तियों का परिचय दे सके। सङ्कीर्ण-मनोवृत्ति एवं स्वल्पोपलब्ध खण्डित सामग्री के अभाव के कारण अपेक्षायें पूर्ण नहीं हो सकीं। अतः सारा इतिहास अपने-अपने स्पर्श में आये हाथी के अङ्गों के अन्य वर्णन सा है, खण्डित, अपूर्ण और हास्यास्पद भी है।

ऐसी स्थिति में हमारी वैचारिक, दार्शनिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक परम्परायें ही हमारी विकीर्ण तथ्य-शृङ्खलाओं का ग्रथन करने में सहायता कर सकती हैं। खेद है कि आज के तथाकथित वैज्ञानिक इतिहासकार परम्परा को निराधार, अवैज्ञानिक, ऐतिहासिक अथवा पुराकथा मात्र मानकर विषयों का अपलाप करते हैं। वास्तविकता तो यह है कि परम्परा ही हमें एक सूत्र में पिरोती है, विलुप्त एवं विस्मृतप्राय तथ्यों का परिचय देती है, समन्वय हेतु समाधान प्रस्तुत करती है।

विकीर्ण खण्डित पुरातात्त्विक अवशेषों के आधार पर भारत का जो भी राजनीतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक अथवा साहित्यिक इतिहास प्रस्तुत किया जा सका वह अपनी आधार सामग्री के सदृश ही स्वल्प एवं अपूर्ण ही है। हर्षवर्धन से पूर्व का इतिहास समग्र भारत

की समन्वित झाँकी भी नहीं दे पा रहा है। उससे पूर्ववर्ती दार्शनिकों, आचार्यों, धर्मधाराओं, ग्रन्थों और सामाजिक मान्यताओं का प्रामाणिक वृत्तान्त उपलब्ध नहीं हो पा रहा है। जिससे उनको लेकर अनेक प्रकार की भ्रान्तियाँ पैदा होती जा रही हैं। कुछ कुत्सित एवं घृणित राजनीतिक स्वार्थसाधक आज राजनीतिक स्वतन्त्रता प्राप्ति की अर्धशताब्दी के बाद भी खुले मस्तिष्क से अपने समृद्ध रिक्थ का सही मूल्याङ्कन न करके विवाद उत्पन्न करते जा रहे हैं। भारत में विभिन्न अवसरों और प्रदेशों में प्रादुर्भूत विचार-धाराओं को परस्पर पूरक और संवर्धक न मानकर परस्पर विरुद्ध सिद्ध किया जा रहा है ।

इसी प्रकार की विवादग्रस्त बातें भगवत्पाद आद्यश्रीशङ्कराचार्य के भी विषय में उठायी जा रही है। उनकी प्राचीनता की समुचित समीक्षा न करके बिना किसी 'ननु-नच' के उनको ईसा की 8वीं शताब्दी का माना जा रहा है, क्योंकि आज उपलब्ध खण्डित स्वल्प साक्ष्य इतने परवर्ती हैं कि उनके आधार पर शङ्कर को और प्राचीन सिद्ध ही नहीं किया जा सकता। प्रसन्नता का विषय है कि कुछ विद्वानों का दृगुन्मेष हो रहा है- आँखे खुल रही हैं, नये विवेचना के स्रोत प्रस्फुटित हो रहे हैं और उनके तथा अन्य अन्तःसाक्ष्यों के आधार पर निष्पक्ष विचार की प्रक्रिया प्रारम्भ हो चुकी है। शङ्कराचार्य के काल निर्धारण में वैदिक परम्परा की प्रतिद्वन्द्वी बौद्धधारा के ग्रन्थ, आचार्य और विषय सहायक हो रहे हैं।

शङ्कराचार्य से महाराज सुधन्वा का सम्बन्ध सिद्ध है। सुन्धवा पौराणिक अथवा ऐतिह्य पात्र न होकर ऐतिहासिक पुरुष रहे हैं। तिब्बत के बौद्ध विद्वान् लामा तारानाथ ने अपने ग्रन्थ "भारत में बौद्ध धर्म का विकास" में ऐतिहासिक पुरुष सुधनु का उल्लेख किया है जो सुधन्वा के समरूप है। हिमाचल प्रदेश के ताबो बौद्धमठ में भी सुधनु से सम्बद्ध अभिलेख प्राप्त हो रहे हैं। इन अभिलेखों पर आस्ट्रिया के बौद्ध-विद्याविद् प्रो. अर्नेस्ट् इस्टाइन केलनर ने पुस्तक लिखी है, जो इटली के रोमनगर की इसमियो संस्था से प्रकाशित हो चुकी है। इनकी सभी बातें हमारे लिये प्रासङ्गिक नहीं भी हो सकती हैं किन्तु इतना तो निश्चित हो जाता है कि सुधनु (=सुधन्वा) ऐतिहासिक पुरुष थे, मात्र मिथक नहीं ।

योरोपीय विद्वान् इङ्गल्स (Ingalls) ने 1954 ई. में शोध पत्रिका " फिलासफी-ईस्ट एण्ड वेस्ट" अङ्क 3 में शङ्कराचार्य द्वारा शारीरक भाष्य में उद्धृत बौद्ध सन्दर्भों की समीक्षा प्रस्तुत की है और नये विचार प्रस्तुत करते हुए पुरानी स्थापनाओं का खण्डन

किया है। इन्होंने भाष्य में तथाकथित रूप से धर्मकीर्ति के नाम से उद्धृत अंश को प्रमाणवार्तिक आदि बौद्ध न्याय के आचार्य धर्मकीर्ति का वचन न मानकर किसी अन्य धर्मकीर्ति का कथन माना है। बौद्ध नैयायिक धर्मकीर्ति के उद्धृत वचन के आधार पर शङ्कराचार्य का समय उनके बाद स्थापित किया जाता है। इङ्गल्स के आधार पर शङ्कर के धर्मकीर्ति से उत्तरवर्तिका की अवधारणा निर्मूल हो जाती है।

इसी प्रकार की बातें माध्यमिक, वैभाषिक, योगाचार और सौत्रान्तिक मतों की 'शारीरकभाष्य' में विवेचना के विषय में उठती हैं। यहाँ केवल सामान्य आधारभूत सिद्धाम्त का खण्डन है, न कि आचार्य विशेष की उक्ति का। इस तथ्य को सभी बौद्ध विद्वान् निर्विवाद रूप से स्वीकार करते हैं कि किसी भी आचार्य ने, चाहे वह वसुबन्धु हों, असङ्ग हों, मैत्रेयनाथ, आर्यदेव अथवा नागार्जुन हों, ऐसा नया कुछ भी नहीं कहा है जिसका उपदेश पूर्ववर्ती बुद्धों ने किसी न किसी रूप में न किया हो। अतः समस्त सम्प्रदायों का मूल तो बुद्ध-वचनों में ही मिलता है, परवर्ती आचार्य तो मात्र उनको व्यवस्थित करने वाले ही हैं, प्रचारक हैं उद्भावक नहीं। बुद्ध भी एक नहीं अब तक के द्वादश कल्पों में कुल मिलाकर तण्ट्ङ्कर से लेकर शाक्यमुनि गौतम बुद्ध तक 28 हो चुके हैं, मैत्रेय नाम के 29वें बुद्ध का प्रादुर्भाव अभी शेष है जो भविष्य में होगा। 'बुद्धवंश' पालिग्रन्थ में (नालन्दा महाविहार से सन् 1959 ई. में प्रकाशित) पृष्ठ 297 से 381 पर इनका वर्णन है। किसी कल्प में चार, किसी में एक, दो, तीन अथवा चार बुद्ध हुये हैं। बुद्ध पद बोधि प्राप्त मनुष्य की उपाधि है नाम विशेष नहीं।

उक्त सभी बुद्ध ऐतिहासिक पुरुष रहे हैं। भद्रकल्प में उत्पन्न ककुसन्ध, कोणागमन तथा कस्सप इन तीनों के स्तूप-स्मारक श्रावस्ती से निकट अथवा कुछ योजन दूर भारत या नेपाल में मिल रहे हैं। इनसे इनकी ऐतिहासिकता सिद्ध हो जाती है। गौतम बुद्ध से सम्बद्ध स्तूप और अवशेष तो लोकविदित ही हैं।

इन सभी बुद्धों की विशेषता यह रही है कि उन्होंने अपनी स्थापनाओं, मान्यताओं, विचारों को अपना स्वतन्त्र चिन्तन नहीं अपितु पूर्ववर्ती बुद्धों द्वारा अनुभव के बाद उपदिष्ट सत्यों का प्रतिरूप माना है-'बुद्ध वंश पालि' पृष्ठ 304 में यही कहा गया है-

अतीत बुद्धानं जिनानं देसितं,
निकीलितं बुद्ध परम्परागतं ।

पुब्बेनिवासानुगताध बुद्धिया,
पकासमी लोकहितं सदेव के ।।१।७९।।

अर्थात् जो एक बुद्ध का उपदेश है वह अतीत के बुद्धों,जिनों द्वारा उपदिष्ट निष्कीलित और बुद्धों की परम्परा से आया हुआ है। वह पूर्व जन्म की स्मृति से अनुगत बुद्धि के द्वारा देवताओं सहित मनुष्यलोक के हितार्थ प्रकाशित किया गया है इसी प्रकार अन्यत्र " पुब्बकेहि महेसीहि आसेवितनिसेवितं" (वही पृष्ठ 314) 2.126 सदृश उक्तियाँ द्रष्टव्य हैं। सम्पूर्ण पालित्रिपिटक तथा संस्कृत स्रोतों में पूर्व बुद्धों की मान्यताओं और अनुभवों के परवर्ती बुद्धों द्वारा प्रतिपादन का उल्लेख स्थान-स्थान पर मिलता है । इसी कारण पूर्ववर्ती बुद्ध के उपदेश शब्दशः और वाक्यशः परवर्ती बुद्धों के कथनों में उद्धृत हो जाते हैं । उनका उल्लेख करते समय आचार्य भी उन्हीं को उद्धृत कर देते हैं जो बाद में अल्पज्ञों द्वारा, बुद्ध का नहीं, आचार्य विशेष के वाक्य समझ लिये जाते हैं। ऐसी ही कुछ बात धर्मकीर्ति तथा अन्य बौद्ध सम्प्रदायों के सिद्धान्तों के निरूपण के विषय में भी चरितार्थ होती है।

आज आवश्यकता है, समय की अपेक्षा है कि वैदिक तथा अवैदिक यावदुपलब्ध समस्त वाङ्मय का आधिकारिक आलोडन-विलोडन करके प्राप्त अन्तःसाक्ष्यों के साहाय्य से बाह्य साक्ष्यों से संगति बैठाते हुये विषय स्थापना की जाये। जहाँ ये भी पूर्णतः सहायक नहीं हो पाते वहाँ परम्परागत मान्यताओं को भी प्रामाणिक मान कर निष्कर्ष निकाला जाये।

कभी कभी तो केवल उत्खनित पुरातात्त्विक सामग्रियों को ही आधार बनाकर विषय स्थापना हास्यास्पद प्रतीत होगा। यथा-यदि काल पात्रों में सुरक्षित सामग्री को ही आधार माना जायेगा तो श्रीमती इन्दिरागांधी की तो ऐतिहासिकता प्रमाणित होगी किन्तु उनके पूर्ववर्ती और परवर्ती अनुल्लिखित प्रधान-मन्त्रियों तथा समाजसेवियों की नहीं।

अतः उदार एवं आग्रह मुक्त दृष्टि से उपलब्ध सर्व विध स्रोतों के आधार पर भारत का एक सर्वाङ्गीण सांस्कृतिक इतिहास रचा जाना चाहिये। प्रस्तुत ग्रन्थ के विद्वान् लेखक ने इसी दिशा में हमें उन्मुख करने का ऐदम्प्रथम सफल प्रयास किया है। जिसके लिए वे साधुवाद के पात्र हैं।

प्रो. कामेश्वरनाथ मिश्र
संस्कृत विभाग,केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान
सारनाथ, वाराणसी-221007

समर्पण

वैदिक सनातन-धर्म के
उन्नायक एवं शिवावतार
श्रीमज्जगद्गुरु आद्यशङ्कराचार्य
के
पादपद्मों में
सादर समर्पित

विषय सूची

बिन्दु-१

गौतम बुद्ध का निर्वाणकाल

पूर्वपक्ष

आज के इतिहास विशेषज्ञ यह मानते हैं कि भगवान् बुद्ध का जन्म ईसवी सन् पूर्व ५६१ तथा निर्वाण ईसवी सन् पूर्व ४८१ में हुआ। यदि आचार्य का समय ईसवी सन् पूर्व ५०९ से ईसवी सन् पूर्व ४७७ होता तो ऐसी स्थिति में उनका शास्त्रार्थ बुद्धानुयायियों के साथ न होकर साक्षात् बुद्ध के साथ ही सम्भव था। क्या इस बात को इतिहास पढ़ने वाला बच्चा भी मान सकता है?

उत्तर पक्ष

कैण्टन [1]से प्राप्त एक अभिलेख का प्रामाण्य ग्रहण कर इतिहासकार डॉ. रमेशचन्द्र मजुमदार एवं डॉ. विद्याधर महाजन ने गौतम बुद्ध का निर्वाण काल ईसवी सन् पूर्व 487 माना है। इसकी पुष्टि बौद्ध-ग्रन्थ 'महावंश' से भी होती है जिसके अनुसार[2] गौतम बुद्ध के निर्वाण के 218 वर्ष पश्चात् मौर्य सम्राट् अशोक का राज्याभिषेक हुआ था। [3] द्वारका-शारदामठ के तत्कालीन शङ्कराचार्य द्वारा 1897 ईसवी सन् में रचित 'विमर्शः' ग्रन्थ के अनुसार ईसवी सन् पूर्व 488 में आचार्य शङ्कर ने अपनी धार्मिक दिग्विजय यात्रा का शुभारम्भ द्वारका से किया। ऐसी स्थिति में द्वारका से अत्यधिक दूर कुशीनारा में 487 ईसवी पूर्व में 80 वर्ष की आयु में मृत्यु को वरण करने वाले गौतम बुद्ध के साथ आचार्य शङ्कर का शास्त्रार्थ होना सम्भव न था। [4] नेपाल के इतिहास से ज्ञात होता है कि शङ्कराचार्य बौद्ध विद्वानों से शास्त्रार्थ करने हेतु उनकी खोज में चल पड़े जिसके फलस्वरूप 16 बोधिसत्व उनकी विद्वत्ता से भयाक्रान्त होकर शास्त्रार्थ से बचने हेतु भारत से नेपाल भाग गये। शङ्कराचार्य उन 16 बोधिसत्त्वों का पीछा करते हुए ई. पूर्व 487 में नेपाल पहुँचे परन्तु उन्हें बोधिसत्व न मिले क्योंकि वे लोग शङ्कराचार्य से बचने हेतु उत्तर दिशा में स्थित हिमालय की ओर भाग गये थे। ऐसी स्थिति में नेपाल के गृहस्थ बौद्ध विद्वानों को शास्त्रार्थ में पराजित कर वहाँ पर सनातनधर्म की पुनःप्रतिष्ठा कर आचार्य शङ्कर वापस पूर्व समुद्र की ओर चले गये।

उपर्युक्त विवरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि आचार्य शङ्कर ने बुद्ध एवं उनके

सोलह बोधिसत्वों से शास्त्रार्थ करने का प्रयास किया परन्तु बुद्ध की मृत्यु तथा बोधिसत्वों के पलायन ने उनके प्रयास को विफल कर दिया। आचार्य शङ्कर का प्रामाणिक काल ई0 पूर्व 507 से ई0 पूर्व 475 है । अतः उपर्युक्त परिस्थितियों में उनका शास्त्रार्थ साक्षात् बुद्ध के साथ न होकर बुद्धानुयायियों के साथ होना पूर्णतया संगत है।

बिन्दु-२

चार, सम्प्रदाय प्रवर्तक बुद्ध

पूर्वपक्ष

आचार्य ने वैभाषिक, सौत्रान्तिक, योगाचार एवं माध्यमिक इन चारों सिद्धान्तों का यथासम्भव निराकरण किया है। यह निश्चित बात है कि ये चार मतभेद बुद्ध के काफी समय बाद में हुए हैं। वैभाषिक मत का प्रवर्तक कात्यायनीपुत्र बुद्ध के तीन सौ वर्ष बाद, सौत्रान्तिक मत का प्रवर्तक कुमारलात बुद्ध के चार सौ वर्ष बाद, योगाचार मत का प्रवर्तक मैत्रेयनाथ ई0 सन् की चतुर्थ शती तथा माध्यमिक मत का प्रवर्तक नागार्जुन ई0 सन् की द्वितीय शती में हुआ था। अतः ई0 सन् की द्वितीय शती से पूर्व आचार्य को ले जाना सम्भव नहीं है।

उत्तरपक्ष

वैभाषिक, सौत्रान्तिक, योगाचार एवं माध्यमिक सम्प्रदायों का प्रवर्तन गौतम बुद्ध एवं उनके तीन पूर्ववर्ती बुद्धों-क्रमशः कश्यप, कोणागमन (कनकमुनि) तथा क्रकुच्छन्द द्वारा किया गया था। कात्यायनीपुत्र, कुमारलात, मैत्रेयनाथ एवं नागार्जुन उपर्युक्त सम्प्रदायों के प्रवर्तक नहीं हैं। इन लोगों ने भाष्यग्रन्थों का सृजन कर पूर्ववर्ती चार बुद्धों द्वारा प्रवर्तित सम्प्रदायों के सिद्धान्तों का विशदीकरण एवं व्याख्यान किया है। इसमें साक्षात् गौतम बुद्ध का वचन प्रमाण है। [5] वेरंजावर्षावास काल में गौतम बुद्ध के शिष्य सारिपुत्र ने उनसे पूछा- 'किन-किन बुद्धों का सम्प्रदाय चिरस्थायी नहीं हुआ और ऐसा होने का कारण क्या था? गौतम बुद्ध ने उत्तर दिया -'भगवान् क्रकुच्छन्द, कोणागमन तथा कश्यप के सम्प्रदाय चिरस्थायी हुए क्योंकि वे श्रावकों को विस्तार पूर्वक धर्मदेशना करने में आलस्य रहित

थे। उनके उपदेश किये सूत्र, गेय, व्याकरण (=व्याख्यान), गाथा, उदान, इतिवृत्तक, जातक, अद्भुत, धर्म व वैदल्य बहुत थे। उन्होंने शिक्षापदों (=विनय) का विधान किया था तथा प्रातिमोक्ष (=भिक्षुओं के आचारिक नियम) का उपदेश किया था जिसके कारण उन बुद्ध भगवानों के तथा बुद्धानुबुद्ध श्रावकों के अन्तर्धान होने पर परवर्ती प्रव्रजित शिष्यों की परम्परा ने उनके सम्प्रदायों को दीर्घकाल तक चिरस्थायी रखा । परन्तु भगवान् विपश्यी, शिखी तथा विश्वभू के सम्प्रदाय चिरस्थायी नहीं हुए क्योंकि वे श्रावकों को विस्तारपूर्वक धर्मदेशना करने में आलसी थे । उनके उपदेश किये सूत्र, गेय, व्याख्यान, गाथा, उदान, इतिवृत्तक, जातक, अद्भुतधर्म व वैदल्य थोड़े थे। उन्होंने शिक्षापदों का विधान नहीं किया था तथा प्रातिमोक्ष का उपदेश नहीं किया था जिसके कारण उन बुद्ध भगवानों तथा उनके बुद्धानुबुद्ध श्रावकों के अन्तर्धान होने के बाद पिछले प्रव्रजित श्रावकों ने उनके सम्प्रदायों का शीघ्र ही लोप कर दिया'।

उपर्युक्त प्रमाण से यह प्रकट होता है कि गौतम बुद्ध के समय कम से कम उनके तीन पूर्ववर्ती बुद्धों द्वारा प्रवर्तित तीन अलग-अलग सम्प्रदायों का विपुल साहित्य वर्तमान था। बाद में गौतम बुद्ध ने अपने इन तीन पूर्ववर्ती बुद्धों का अनुकरण करते हुये चौथे सम्प्रदाय का प्रवर्तन किया। इन्हीं चार सम्प्रदायों को विभिन्न बौद्ध विद्वानों के भाष्यग्रन्थों की प्रसिद्धि के आधार पर हम वैभाषिक, सौत्रान्तिक, योगाचार एवं माध्यमिक सिद्धान्तों के नाम से जानते हैं। अतएव यह कहना सर्वथा अयुक्तियुक्त एवं असंगत है कि उपर्युक्त चारों सम्प्रदायों का विकास गौतम बुद्ध के पश्चात् हुआ। परवर्ती बौद्ध विद्वानों ने तो केवल प्राचीन बौद्ध सिद्धान्तों की व्याख्या एवं मण्डन किया है न कि प्रवर्तन।

आचार्य नरेन्द्रदेव लिखते है - [6] 'हीनवादियों के अनुसार शत साहस्रिकाप्रज्ञापारमिता' अन्तिम महायान सूत्र है और इसके रचयिता नागार्जुन हैं। वास्तव में नागार्जुन कृत प्रज्ञापारमिता सूत्र शास्त्रपंचविंशतिसाहस्रिकाप्रज्ञापारमिता की टीका है । इसी कारण भ्रमवश नागार्जुन को शतसाहस्रिकाप्रज्ञापारमिता का रचयिता मान लिया गया। कम से कम नागार्जुन महायान के प्रतिष्ठापक नहीं है, क्योंकि इसमें सन्देह नहीं कि उनसे बहुत पहले ही महायान सूत्रों की रचना हो चुकी थी।' आचार्य नरेन्द्रदेव आगे लिखते हैं- [7] योगाचार विज्ञानवाद के प्रतिष्ठापक असंग न थे बल्कि मैत्रेयनाथ थे। अभिसमयालङ्कारकारिका मैत्रेयनाथ की कृति है। यह ग्रन्थ पंचविंशतिसाहस्रिकाप्रज्ञापारमिता सूत्र की टीका है। यह टीका योगाचार की दृष्टि से लिखी गई है।

बिन्दु-३

पूर्ववर्त्ती बुद्धों के अस्तित्त्व का प्रमाण

पूर्वपक्ष

अभिलेखीय, पुरातात्त्विक एवं प्राचीन काल के विदेशी यात्रियों के विवरणात्मक साक्ष्यों के अभाव में गौतम बुद्ध के पूर्ववर्ती बुद्धों-क्रकुच्छन्द, कोणागमन तथा कश्यप को इतिहास पुरुष कैसे माना जा सकता है ?

उत्तरपक्ष

ईसवी सन् की पाँचवीं सदी के प्रथम दशक में भारत भ्रमण कर रहे चीनी यात्री फाहियान ने लिखा है- [8] श्रावस्ती नगर के दक्षिण पश्चिम दिशा में 12 योजन पर 'न पीइ किया' नामक गाँव में क्रकुच्छन्द बुद्ध व यहाँ से उत्तर दिशा में एक योजन पर एक गाँव में कनक मुनि बुद्ध (=कोणागमन बुद्ध) का तथा श्रावस्ती नगर से पश्चिम 50 ली पर 'टूवीई' नामक गाँव में कश्यप बुद्ध के जन्म स्थानों पर उनके स्तूप बने हैं। [9] फाहियान के यात्रा विवरण के हिन्दी भाषान्तरकर्ता श्री जगन्मोहन वर्मा के अनुसार- 'न पीइ किया' को नाभिका कहते थे। इसका खण्डहर नेपाल राज्य में बाणगंगा की बाईं ओर 'लोरी की कुदान' और 'गोटिहवा' गाँवों के मध्य में है । बुद्ध वंश में इसे क्षेमावती लिखा है। कनकमुनि का स्थान नाभिका से उत्तर-पूर्व साढ़े छः मील पर उजाड़ पड़ा है। तिलौरा और गोवरी के पास खण्डहर हैं। इस पर का अशोक स्तम्भ अब तिलौरा से डेढ़ मील उत्तर में निगलिहवा में टूटा पड़ा है। 'टूवीई' श्रावस्ती से 9 मील दूर 'टंडवा' नामक गाँव है।

फाहियान आगे लिखता है- [10] दक्षिण जनपद में प्राचीन कश्यप बुद्ध का एक संघाराम है जो एक समूचे पर्वत को काटकर बना है। [11] संकाश्य में जहाँ पूर्व के तीन बुद्ध और शाक्यमुनि बुद्ध बैठे, जिस स्थान पर चंक्रमण किया, जिस स्थान पर सब बुद्धों की छाया है सर्वत्र स्तूप बने हैं। [12] कान्यकुब्ज से दक्षिण पश्चिम में साकेत नामक महाजनपद में चारों बुद्धों के चंक्रमण और बैठने के स्थान पर अब स्तूप बने हैं। [13] श्रावस्ती में देवदत्त के अनुयायियों के भी संघ हैं। वे पूर्व के तीन बुद्धों की पूजा करते हैं, केवल शाक्यमुनि बुद्ध की पूजा नहीं करते। [14] गृध्रकूट पर्वत की चोटी पर पहुँचने से 3 ली इधर ही एक

पत्थर की कंदरा है। कंदरा के सामने चारों बुद्धों के बैठने के स्थान हैं। [15]चंपा (भागलपुर जनपद का एक विभाग) में सब बुद्धों के बैठने के स्थान पर स्तूप बने हैं।

[16]हरिस्वामिनी के (गुप्त) संवत् 131 तुल्य ईसवी सन् 450-51 के साँची प्रस्तर अभिलेख में हरिस्वामिनी के द्वारा प्रदत्त 4 दीनार की अक्षयनीवी के ब्याज से चतुर्बुद्ध आसन के चार बुद्धों में से प्रत्येक बुद्ध के लिये प्रतिदिन एक एक दीप जलाने का निर्देश है।

[17]कोणागमन बुद्ध (=कनक मुनि) के ऐतिहासिकता की पुष्टि मौर्य सम्राट् अशोक के निगलिहवा स्तम्भाभिलेख से भी होती है। उक्त अभिलेख के अनुसार सम्राट् अशोक मौर्य ने अपने राज्याभिषेक के 14वें वर्ष में कोणागमन बुद्ध के स्तूप को द्विगुणित करवा दिया तथा अपने राज्याभिषेक के (20वें) वर्ष में वहाँ जाकर पूजन-अर्चन किया।

अपनी भारत यात्रा समाप्त कर चीनी यात्री फाहियान 412 ईसवी सन् में श्रीलंका पहुँचा। [18] वहाँ पर एक बुद्ध के दाँत की राजकीय शोभायात्रा के अवसर पर फाहियान ने एक राजकीय घोषणा सुनी जिसके अनुसार उन बुद्ध का निर्वाण उस समय से 1467 वर्ष पूर्व अर्थात् ईसवी सन् पूर्व 1055 में हुआ था। एक अन्य स्थान पर फाहियान ने लिखा है- [19] हान देश (=चीन) में चाऊ वंशी महाराज पिंग के शासन काल में मैत्रेय बोधिसत्व की मूर्ति की स्थापना बुद्धदेव के निर्वाण से तीन सौ वर्ष पीछे हुई। [20] पिंग का शासनकाल 750 ई0पू0 से 719 ई0पू0 तक था। श्रीलंकाई घोषणा के परिप्रेक्ष्य में यह कहा जा सकता है कि मैत्रेय बोधिसत्व की प्रतिमा-स्थापन का कार्य चीन में कश्यप बुद्ध के निर्वाण के 305 वर्ष पश्चात् राजा पिंग के शासन काल के प्रारम्भिक वर्ष ई0पू01050 में हुआ था। गौतम बुद्ध के ठीक पूर्ववर्ती सम्प्रदाय प्रवर्तक बुद्ध कश्यप थे अतः निश्चितरूपेण ई0पू0 1055 कश्यप बुद्ध का निर्वाण काल सिद्ध होता है।

[21] थूप वंश (स्तूपवंश) नामक ग्रन्थ में भी क्रकुच्छन्द, कनकमुनि तथा कश्यप बुद्ध के स्तूपों का सम्यक् विवरण उपलब्ध है।

उपर्युक्त अभिलेखीय, पुरातात्विक एवं प्राचीनकाल में भारत-भ्रमणकारी चीनी यात्री फाहियान के विवरणों से इसमें रंचमात्र भी सन्देह नहीं रह जाता कि गौतम बुद्ध की ही भाँति उनके पूर्ववर्ती तीन बुद्ध क्रमशः कश्यप, कोणागमन तथा क्रकुच्छन्द इतिहास पुरुष थे।

बिन्दु-४

प्रज्ञापारमिता के अन्वेषक सुमेध बुद्ध

पूर्वपक्ष

'प्रज्ञापारमिता' के अन्वेषक यदि नागार्जुन नहीं तो कौन से बुद्ध थे?

उत्तरपक्ष

[22]आचार्य नरेन्द्रदेव के अनुसार सुमेध नामक बुद्ध के अन्वेषण करने से दस पारमिताएँ प्रकट हुई, जिनका आसेवन पूर्वकाल में बोधिसत्वों ने किया था। पारमिता का अर्थ है पूर्णता, पालिरूप 'पारमी' है। दश पारमिताएँ हैं-दान, शील, नैष्कर्म्य, प्रज्ञा, वीर्य, क्षान्ति, सत्य, अधिष्ठान, मैत्री तथा उपेक्षा। [23]बौद्ध ग्रन्थ महावंश के अनुसार सुमेध 11वें तथा गौतम 25वें बुद्ध थे। [24]यही क्रम बौद्ध साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान् डॉ0 कनाई लाल हाजरा को भी अभीष्ट है। इससे सम्यक् बोध होता है कि सुमेध बुद्ध गौतम बुद्ध से बहुत पूर्व हुए थे।

बिन्दु-५

प्रथम तीन पीठों के अनुसार आदि शङ्कराचार्य का आविर्भाव-काल

पूर्वपक्ष

आचार्य द्वारा प्रतिष्ठापित चार मठ तो प्रसिद्ध ही हैं। द्वारका पीठ की वंशानुमातृका के अनुसार आचार्य का जन्म युधिष्ठिर शक संवत् २६३१ व समाधि युधिष्ठिर शक संवत् २६६३ तथा गोवर्द्धन पीठ की वंशानुमातृका के अनुसार आचार्य का जन्म २३०० वर्ष पूर्व सिद्ध होता है। ज्योतिर्मठ की परम्परा विच्छिन्न होने के कारण वहाँ से कोई निश्चित समय नहीं प्राप्त होता। इस प्रकार आचार्य के आविर्भाव काल के सम्बन्ध में इन मठों में मतभेद है?

उत्तरपक्ष

आचार्य शङ्कर का आविर्भाव काल उपर्युक्त तीन मठों : शारदामठ-द्वारका, गोवर्द्धनमठ-पुरी तथा ज्योतिर्मठ-बदरिकाश्रम के अनुसार निम्नाङ्कित है-

[25] शारदामठ-द्वारका के पूर्व शङ्कराचार्य श्रीमद् राजराजेश्वरशङ्कराश्रम द्वारा 1897 ई० सन् में विरचित 'विमर्शः' नामक ग्रन्थ के अनुसार आचार्य शङ्कर का जन्म युधिष्ठिर शक सम्वत् 2631 वैशाख शुक्ल पञ्चमी तथा कैलाश गमन युधिष्ठिर शक संवत् 2663 कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा लिखा है। वर्तमान में युधिष्ठिर शक सम्वत् 5138 वर्त रहा है इसमें आचार्य शङ्कर के जन्म वर्ष यु०श० संवत् 2631 का वियोग करने पर उनका आविर्भाव काल वर्तमान काल से 2507 वर्ष पूर्व सिद्ध होता है। वर्तमान काल में ईसवी सन् का 2000 वाँ वर्ष चल रहा है अतएव ईसवी सन् में आचार्य शङ्कर का आविर्भाव काल ईसवी पूर्व 507 (=2507वर्ष-2000 ई०सन्) निश्चित होता है।

[26] गोवर्द्धनमठ-पुरी के अनुसार आदिशङ्कराचार्य का आविर्भाव विक्रम संवत् पूर्व 450 में वैशाख शुक्ल पञ्चमी के दिन हुआ था। वर्तमान काल में विक्रम संवत् 2057 चल रहा है इसमें 450 वर्ष का योग करने पर आचार्य शङ्कर का आविर्भाव काल प्राप्त होता है जो कि वर्तमान काल से 2507 वर्ष पूर्व सिद्ध होता है। विक्रम संवत् पूर्व 450 वर्ष को ईसवी सन् में परिवर्तित करने पर उसमें 57 वर्ष का योग करना पड़ेगा क्योंकि विक्रम संवत् का प्रवर्तन ईसवी सन् पूर्व 58वें वर्ष में हुआ था जिसके कारण विक्रम संवत् तथा ईसवी सन् में 57 वर्ष का अन्तर प्राप्त होता है, इस प्रकार आचार्य का आविर्भाव काल ई०पू० 507 निश्चित होता है।

[27] ज्योतिर्मठ-बदरिकाश्रम के अनुसार आचार्य शङ्कर का जन्म कलि संवत् 2595 में वैशाख शुक्ल पञ्चमी के दिन हुआ था। वर्तमान काल में कलि संवत् 5102 चल रहा है इसमें से आचार्य शङ्कर का जन्म वर्ष कलि संवत् 2595 का वियोग करने पर आदिशङ्कराचार्य का आविर्भाव काल वर्तमान काल से 2507 वर्ष पूर्व प्राप्त होता है। कलि संवत् का आरम्भ ई०पू० 3102 में हुआ था इसमें से आचार्य शङ्कर के जन्म वर्ष कलि सं. 2595 का वियोग करने पर उनका आविर्भाव काल ई०पू० 507 निश्चित होता है।

यहाँ यह स्पष्ट कर देना प्रासंगिक होगा कि ज्योतिर्मठ की परम्परा भी अविच्छिन्न है। [28] इस पीठ पर प्रथम आचार्य तोटकाचार्य से 42वें आचार्य श्रीरामकृष्ण तीर्थ पर्यन्त

सभी आचार्य निर्विघ्न समासीन रहे। ईसवी सन् 1776 में श्री रामकृष्ण तीर्थ के ब्रह्मलीन होने के पश्चात् इस पीठ के 43वें आचार्य टोकरानन्द जी को टिहरी-गढ़वाल के नरेश प्रदीप शाह ने लोभवश बद्रीनाथ मन्दिर के अर्चक पद को नहीं संभालने दिया। नरेश ने एक नम्बूदरीपाद ब्राह्मण गोपाल नामक ब्रह्मचारी को रावल की उपाधि से विभूषित कर बद्रीनाथ मन्दिर के अर्चक पद पर वि0सं0 1833 में समासीन कर दिया, जिसके कारण श्री टोकरानन्द जी को ज्योतिर्मठ में रहकर अपने धार्मिक कृत्य का निर्वहन करना कठिन हो गया क्योंकि पूर्ववर्ती शङ्कराचार्यों का आर्थिक स्रोत बद्रीनाथ मन्दिर में श्रद्धालुओं द्वारा अर्पित भेंट-उपहार ही था।

[29] ऐसी विषम परिस्थिति में ज्योतिर्मठ के 43वें आचार्य टोकरानन्द जी गुजरात प्रान्त के अहमदाबाद जनपद में अवस्थित धोलका चले आये तथा धोलका की धर्मानुरागी जनता के द्वारा प्रदत्त भेंट-उपहार की धनराशि से उन्होंने ज्योतिर्मठ के स्थानापन्न मुख्यालय की स्थापना की। ज्योतिर्मठ के इस स्थानापन्न मुख्यालय में श्री टोकरानन्द समेत कुल 9 आचार्य हुए। तत्पश्चात् ईसवी सन् 1941 में ज्योतिर्मठ बदरिकाश्रम के मुख्यमठ का जीर्णोद्धार कर वहाँ पर श्री ब्रह्मानन्द सरस्वती का अभिषेक किया गया। श्री ब्रह्मानन्द सरस्वती के बाद श्री कृष्णबोधाश्रम जगद्गुरु शङ्कराचार्य हुए। श्री कृष्णबोधाश्रम के बाद अनन्तश्रीविभूषित स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती जी महाराज यहाँ के शङ्कराचार्य के पद पर अभिषिक्त हुए जो कि वर्तमान काल तक पदारूढ़ हैं। मूल ज्योतिर्मठ की पुनः प्रतिष्ठा हो जाने के पश्चात् ज्योतिर्मठ का स्थानापन्न मुख्यालय धोलका मठ ईसवी सन् 1986 में ज्योतिर्मठ के वर्तमान जगद्गुरु शङ्कराचार्य अनन्तश्रीविभूषित स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती जी को समर्पित कर दिया गया। इस प्रकार यह कहना कि ज्योतिर्मठ की परम्परा विच्छिन्न रही, कोरा भ्रम है। टोकरानन्द जी से अनन्तश्रीविभूषित स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती पर्यन्त ज्योतिर्मठ के 12 आचार्य हुए हैं और ब्रह्मचारी गोपाल से वासुदेव पर्यन्त बद्रीनाथ मन्दिर के कुल 12 ही रावल भी अब तक हुए हैं।

उपर्युक्त विवरणों से स्पष्ट है कि आचार्य शङ्कर के आविर्भावकाल के सम्बन्ध में अविच्छिन्न परम्परा वाले शारदामठ-द्वारका, गोवर्द्धनमठ-पुरी एवं ज्योतिर्मठ-बदरिकाश्रम में पूर्ण मतैक्य है और ये तीनों मठ आचार्य शङ्कर का आविर्भाव काल वर्तमान काल से 2507 वर्ष पूर्व तथा कैलाशगमन काल 2475 वर्ष पूर्व मानते हैं।

बिन्दु-६

शृङ्गगिरिपीठ के अनुसार आदि शङ्कराचार्य का आविर्भाव-काल

पूर्वपक्ष

परंन्तु शृङ्गगिरिपीठ के अनुसार ३८८९ कलि संवत् आचार्य का आविर्भाव काल है-

निधि नागे भवह्नब्दे विभवे मासि माधवे ।
शुक्ले तिथि दशम्यां तु शङ्करार्योदयः स्मृतः ॥

यद्यपि कुछ आधुनिक अन्वेषकों ने 'काशी में कुम्भकोणम् मठ विषयक विवाद' नामक ग्रन्थ का उद्धरण देकर आचार्य का ६८४ ईसवी सन् से ७१६ ईसवी सन् तक का समय शृङ्गगिरि वालों को मान्य बताया है तथा कुछ अन्य विचारकों ने सुरेश्वराचार्य को दीर्घायु बताकर सैकड़ों वर्ष पूर्व आचार्य को ले जाने की बात लिखी है, किन्तु १९८८ ईसवी सन् में द्वादश शताब्दी मनाने के सम्बन्ध में शृङ्गगिरि के शङ्कराचार्य के साथ जो पत्र व्यवहार हुआ उसमें तत्कालीन पीठाधिपति ने उसे स्वीकृत करते हुए प्रामाणिक बताया। शृङ्गगिरि मठ वालों के अनुसार शृङ्गगिरि के उत्कर्ष को कम करने और अपने महत्व को बढ़ाने के लिए दूसरे मठ वालों ने आचार्य को तेरह सौ वर्ष पीछे ले जाने का निर्णय किया?

उत्तरपक्ष

शृङ्गगिरि मठ की प्राचीन पारम्परिक मान्यता के अनुसार आदिशङ्कराचार्य का जन्म विक्रम शासन के 14वें वर्ष में हुआ था। इस संदर्भ में माधवाचार्य कृत शङ्करदिग्विजय ग्रन्थ के आङ्ग्लभाषान्तरकर्ता श्री रामकृष्ण मठ, मद्रांस (सम्प्रति चेन्नई) के स्वामी तपस्यानन्द को तत्कालीन शृङ्गगिरिपीठ के शङ्कराचार्य के व्यक्तिगत सचिव द्वारा लिखे गये एक पत्र का सुसंगत अंश इस प्रकार है-

[30] शृङ्गगिरि मठ के अभिलेखों के अनुसार शङ्कर का जन्म विक्रमादित्य के शासन

के 14वें वर्ष में हुआ था। कहीं भी शृङ्गगिरि मठ के अधिकृत व्यक्तियों ने स्वयं ईसवी सन् पूर्व अथवा ईसवी सन् पश्चात् की अवधि नहीं दी है।'.......

'संकलनकर्ताओं ने इसको उज्जैन के विक्रमादित्य का संवत् मिथ्या उद्धृत किया है। श्री एल. राइस ने सुझाया है कि यह चालुक्य विक्रमादित्य के शासन वर्ष में अंकित है जो कि इतिहासकारों के अनुसार 655 ई० से 670 ई० तक शासक थे'।

उपर्युक्त पत्रांश से स्पष्ट है कि शृङ्गगिरि के पूर्व शङ्कराचार्य श्रीमद् अभिनवविद्यातीर्थ (आचार्यत्व काल ई० सन् 1954 से ई० सन् 1989) के पूर्वाचार्यों के समय तक शृङ्गगिरि मठ की प्राचीन मान्यता यही थी कि आचार्य शङ्कर का जन्म किसी विक्रम नामक शासक के 14वें वर्ष में हुआ था। परन्तु पाश्चात्य विद्वान् एल. राईस के सुझाव को गुरुता प्रदान करते हुए श्रीमद् अभिनव विद्यातीर्थ के समय में आचार्य शङ्कर का आविर्भाव काल ईसवी सन् 669 मान लिया गया। शृङ्गगिरि मठ के एक अन्य पूर्वाचार्य श्री सच्चिदानन्द शिवाभिनव नरसिंह भारती (आचार्यत्व काल 1879 ई० सन् से 1912 ई० सन्) की आन्ध्र भाषा में लिखित जीवनी 'महान तपस्वी' में शृङ्गगिरिमठ की अर्वाचीन मान्यता के अनुसार कालक्रमानुसार एक आचार्यावली प्रस्तुत की गई है। उस पुस्तक में दिनाङ्क 15-5-1966 ई० की तिथि को मुद्राङ्कित तत्कालीन शङ्कराचार्य श्रीमद् अभिनव विद्यातीर्थ का संदेश भी प्रकाशित किया गया है। ऐसी स्थिति में पुनः इन्हीं आचार्य द्वारा आचार्य शङ्कर का आविर्भाव काल 788 ईसवी सन् मान लेना जैसा कि पूर्वपक्षी ने लिखा है, यह प्रमाणित कर देता है कि इन आचार्य के पास ऐसा कोई ठोस प्रमाण नहीं था जिसके आधार पर वे आचार्य शङ्कर का आविर्भाव काल दृढ़ता पूर्वक बता सकते । जिसके कारण अन्य लोगों के सुझाव पर एक बार इन्होंने आचार्य शङ्कर का आविर्भाव काल 669 ई० तथा दूसरी बार पूर्वपक्षी के सुझाव पर 788 ई० मान लिया।

वास्तव में शृङ्गगिरि मठ की प्राचीन परम्परा में जिस विक्रमादित्य के शासन के 14वें वर्ष में आचार्य शङ्कर का जन्म होना लिखा है उसका अभिषेक ई०पू० 521 में हुआ था। यह कोई और नहीं बल्कि उज्जैन का राजा चण्डप्रद्योत था। चण्ड का अर्थ विक्रम व वैक्रम तथा प्रद्योत का अर्थ आदित्य शब्दकोश में दिया गया है। जिससे स्पष्ट

हो जाता है कि चण्डप्रद्योत, विक्रमादित्य का ही रूपान्तर है। [31]कथासरित्सागर में कहा गया है कि इसका यथार्थ नाम विक्रमादित्य था। शत्रुओं के लिए कठिन होने के कारण इसे विषमशील तथा बड़ी सेना रखने के कारण महासेन कहा जाता था। माता काली को इसने अपनी एक उँगली काटकर अर्पित कर दी थी। जिसके कारण इसे चण्ड भी कहते थे। इसने कर्णाट आदि देशों के राजाओं को जीत लिया था। ऐसी स्थिति में कर्णाट राज्य के अन्तर्गत पड़ने वाले शृङ्गगिरि पीठ के प्राचीन अभिलेख में निश्चितरूप में इसी राजा विक्रमादित्य के शासन वर्ष का उल्लेख है। इस नरेश के शासन का 14वाँ ई0 पू0 507 ही प्राप्त होता है जो कि आदि शङ्कराचार्य का वास्तविक आविर्भाव काल है।

पूर्वपक्षी द्वारा उद्धृत श्लोक किसी अन्य शङ्कर नामक शङ्कराचार्य के जन्मकाल को बताता है क्योंकि उक्त शङ्कर का जन्म विभव वर्ष में दशमी के दिन होना लिखा है जबकि आदि शङ्कराचार्य का जन्म नन्दन वर्ष में वैशाख शुक्ल पञ्चमी के दिन हुआ था। वैसे यह श्लोक शृङ्गगिरि मठ की प्राचीन परम्परा का नहीं है।

यह कहना कि शृङ्गगिरि की प्रतिष्ठा को कम करने के लिये अन्य मठों के आचार्यों ने परस्पर विचार कर आदि शङ्कराचार्य का काल 1300 वर्ष पीछे कर दिया मात्र कुण्ठा एवं तुच्छ अहम् का प्रतीक है। आदिशङ्कराचार्य के आविर्भावकाल पर उनके द्वारा स्थापित चार आम्नाय मठों की प्रतिष्ठा आधारित नहीं है बल्कि इन चारों मठों की प्रतिष्ठा इस बात पर आधारित है कि उन्होंने इन चार मठों की आम्नाय मठों के रूप में प्रतिष्ठा करके मठाम्नाय-महानुशासनम् में इन मठों- शारदामठ-द्वारका, गोवर्द्धनमठ-पुरी, ज्योतिर्मठ-बदरिकाश्रम, तथा शृंगगिरि मठ के पीठाधीश्वरों को अपनी प्रतिमूर्ति कह दिया। चारों मठों की प्रतिष्ठा, सम्मान एवं मर्यादा समान है तथा सम्पूर्ण सनातनधर्मावलम्बी इन चारों पीठों के आचार्यों में समान श्रद्धा रखते हैं।[32] आर्य समाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द सरस्वती ने 1875 ईसवी सन् में लिखित अपने ग्रन्थ 'सत्यार्थ प्रकाश' में लिखा है कि उनके ग्रन्थ लेखन में 2200 वर्ष पूर्व शङ्कराचार्य का जन्म हुआ था तो क्या स्वामी दयानन्द सरस्वती ने भी अन्य पीठों के शङ्कराचार्यों से मिलकर उनकी प्रतिष्ठा बढ़ाने तथा शृङ्गगिरि मठ के उत्कर्ष को कम करने के लिए ऐसा लिख दिया ?

बिन्दु-७

शृङ्गगिरि(शृङ्गेरी)पीठ की अर्वाचीन अवधारणा की विसंगतियाँ

० पूर्वपक्ष

शृङ्गगिरि मठ की परम्परा में मान्य प्राचीन ग्रन्थों एवं शृङ्गगिरि मठ की कथित अर्वाचीन परम्परा की मान्यताओं में ऐतिहासिक साक्ष्यों के आलोक में जब तक विसंगतियाँ नहीं प्रदर्शित की जातीं तब तक हमें उत्तरपक्षी मत को मानने में आपत्ति बनी रहेगी!

उत्तर पक्ष

शृङ्गगिरि मठ की परम्परा में मान्य ग्रन्थों एवं इस मठ की अर्वाचीन अवधारणा में निम्नाङ्कित विसंगतियाँ हैं -

1. माधवाचार्य विरचित शङ्कर दिग्विजय - [33]यह ग्रन्थ शृङ्गगिरि मठ के शङ्कराचार्य विद्यारण्यमुनि द्वारा ईसवी सन् की 14वीं सदी में विरचित माना जाता है। शृङ्गगिरिमठ के मतावलम्बी इस ग्रन्थ को आदरणीय व प्रमाण मानते हैं। [34]इस ग्रन्थ के अनुसार सम्राट् सुधन्वा आचार्य शङ्कर के समकालीन नरेश थे।[35] राजा सुधन्वा दक्षिणी अवन्ति के शासक थे। माहिष्मती नगरी उनकी राजधानी थी जो कि वर्तमान काल में मध्य प्रदेश के नीमाड़ जनपद में महेश्वर नामक स्थान के रूप में ज्ञात है। इसी नगरी में आचार्य शङ्कर का शास्त्रार्थ धुरंधर मीमांसक मण्डन मिश्र के साथ हुआ था। प्रसिद्ध राजस्थानी इतिहासकार श्यामल दास ने अपने 'वीर विनोद' नामक मेवाड़ के इतिहासग्रन्थ में माहिष्मती पर राज्य करने वाले चौहान राजवंश की एक प्राचीन सूची प्रस्तुत की है जिसमें प्रथम शासक चाहमान की छठवीं पीढ़ी में सुधन्वा तथा 41वीं पीढ़ी में वासुदेव आते हैं। इस ग्रन्थ की प्रथम आवृत्ति 1886 ई0 में प्रकाशित हुई थी। चौहान राजवंश के एक अन्य इतिहासवेत्ता डॉ. दशरथ शर्मा ने अपने ग्रन्थ 'अर्ली चौहान डायनेस्टीज' में अभिलेखीय साक्ष्यों के आलोक में राजा वासुदेव से लेकर उनकी 22वीं पीढ़ी में आने वाले दिग्विजयी दिल्ली सम्राट् पृथ्वीराज चौहान (तृतीय) तक की एक सूची प्रस्तुत की है। <u>डॉ. शर्मा की इस सूची के अनुसार वासुदेव का राज्यारम्भ ईसवी सन् 551 तथा</u>

पृथ्वीराज चौहान का राज्यावसान ईसवी सन् 1192 में हुआ था । इस अवधि में कुल 22 पीढ़ी के राजाओं ने 641 वर्ष राज्य किया। दूसरी ओर श्यामल दास की सूची के अनुसार वासुदेव के एक अन्य पुत्र की शाखा में उनकी 14वीं पीढ़ी में गोगादेव हुए जो 1024 ई0 सन् में वीरगति को प्राप्त हुए। वासुदेव की इस शाखा की 14 पीढ़ी के राजाओं ने कुल 473 वर्ष राज्य किया। इन दोनों शाखाओं के राजाओं के औसत के अनुसार प्रत्येक पीढ़ी के राजाओं का औसत शासनकाल पूर्ण वर्षों में 30 वर्ष प्राप्त होता है। राजा सुधन्वा की 36वीं पीढ़ी में वासुदेव आते हैं जिनका राज्यारम्भ ई0 सन् 551 में हुआ था अतः उनसे 35 पीढ़ी पूर्व के राजा सुधन्वा का राज्यारम्भ काल ईसवी सन् पूर्व 501 प्राप्त होता है (551 ई0+35×30 वर्ष)। ऐसी स्थिति में जबकि 551 ईसवी सन् में महाराज सुधन्वा से उनकी 36वीं पीढ़ी में आने वाला अपत्य राज्य कर रहा था तब राजा सुधन्वा के समकालीन आदि शङ्कराचार्य का आविर्भाव काल 788 ई0 क्योंकर हो सकता है?

2. मठाम्नाय-महानुशासनम् : यह ग्रन्थ आदि शङ्कराचार्य द्वारा प्रणीत है तथा शृङ्गगिरिमठ के लिए प्रमाणभूत है। [36]इसमें भी राजा सुधन्वा का उल्लेख आदि शङ्कराचार्य ने किया है। ऐसी स्थिति में 501 ई0पू0 में अभिषिक्त सुधन्वा के समकालीन आदिशङ्कराचार्य का आविर्भाव काल 788 ई0 कैसे माना जा सकता है?

3. गुरुवंश काव्यम् : यह ग्रन्थ शृङ्गगिरि के पूर्व शङ्कराचार्य श्रीमद् सच्चिदानन्द भारती स्वामी (आचार्यत्व काल 1705 ई0 सन् से 1741 ई0 सन्) के सभा पण्डित काशी लक्ष्मण शास्त्री द्वारा लगभग 1735 ई0 सन् में लिखा गया था। [37]इस ग्रन्थ में कहा गया है कि शृङ्गगिरि मठ के 13वें आचार्य नरसिंह भारती चक्रवर्तियों में धुरन्धर वेदविद्यानिष्णात,सम्वत् प्रवर्तक विक्रमादित्य के समकालीन थे । 'महान् तपस्वी' में दी गई आचार्यावली के अनुसार यह 13वें आचार्य नरसिंह भारती आदिशङ्कराचार्य के जन्म के 720 वर्ष बाद शृङ्गेरी के आचार्य बने। वर्तमान काल में विक्रमादित्य नामधारी दो राजाओं के संवत् प्रसिद्ध हैं- प्रथम विक्रम संवत् जिसका प्रवर्तन उज्जैन नरेश विक्रमादित्य ने ई0 पू0 58 में किया था तथा दूसरा [38]चालुक्य विक्रम संवत् जिसका प्रवर्तन कल्याणी नरेश चालुक्य विक्रमादित्य (षष्ठ) ने 11 फरवरी 1076 ई0 सन् में किया था। उज्जैन नरेश विक्रमादित्य का समकालीन नरसिंहभारती को मानने पर आदिशङ्कराचार्य का आविर्भाव काल उनसे 720 वर्ष पूर्व अर्थात् ई0 पूर्व 8वीं सदी तथा चालुक्य विक्रम का

समकालीन मानने पर ई.सन् की चौथी सदी का पूर्वार्द्ध सिद्ध होता है जबकि शृङ्गगिरिमठ की तथाकथितं अर्वाचीन मान्यता के अनुसार आदि शङ्कराचार्य का जन्मकाल 788 ई0 माना जाता है, इस प्रहेलिका का समाधान क्या है? [38] गुरुवंश काव्यम् से ज्ञात होता है कि पेशवा बाजीराव के कर्णाटक अभियान काल (ईसवी सन् 1726-27) में पेशवा की सेना द्वारा शृङ्गगिरि मठ को मटियामेट कर दिया गया। इससे स्पष्ट हो जाता है कि गुरुवंश काव्यम् के लिखे जाने के समय तक शृङ्गगिरिमठ के सभी अभिलेख व प्रमाण समाप्त हो चुके थे।

[39]शृङ्गगिरि के शङ्कराचार्य सच्चिदानन्द भारती का टीपू सुल्तान के साथ मधुर सम्बन्ध था जिसकी पुष्टि सुल्तान द्वारा 1793 ई0 में उनको लिखे एक पत्र से होती है। टीपू सुल्तान ने इन आचार्य को मुकुट आदि भेंट किया था। टीपू सुल्तान के साथ उनका यह सम्बन्ध ही मठ के विनाश का पुनः कारण बना। [40]1791 ई0 में मराठा सरदार रघुनाथ राव पटवर्द्धन के सैनिकों ने शृङ्गगिरि मठ को पुनः जला कर नष्ट कर दिया। ऐसी स्थिति में शृङ्गगिरि मठ के प्राचीन अभिलेखों के बचे होने की कल्पना करना कहाँ तक उचित है?

4. श्री शङ्कराचार्य चरित्रम् : यह ग्रन्थ महीसूर (मैसूर) राज्य के तत्कालीन पंडित धर्माधिकारी श्री वेंकट सुब्रह्मण्यम् शास्त्री के अनुज श्री वेंकटाचल शर्मा द्वारा 1914 ई0 सन् में लिखा गया था। इस ग्रन्थ में इस बात का उल्लेख है कि विद्याशङ्कर भारती नामक शृङ्गगिरिमठ के एक शङ्कराचार्य का जन्म शालिवाहन शक सम्वत् 491 माघ कृष्ण चतुर्दशी तुल्य ई0 सन् 499 को मलय देश में हुआ था। ये अत्यधिक प्रतिभाशाली होने तथाभारत भूमण्डल के समस्त वादियों को शास्त्रार्थ में परास्त कर देने के कारण द्वितीय शङ्कर नाम प्रसिद्ध हुए। ये शालिवाहन शक संवत् 491 कार्तिक शुक्ल त्रयोदशी शुक्रवार तुल्य ईसवी सन् 569 में कीकट में ब्रह्मलीन हुए। ऐसी स्थिति में आदिशङ्कराचार्य का जन्म ई0 सन् 788 में होना कैसे सम्भव है?

5. शृङ्गगिरि मठ की प्राचीन सूची : स्वामी विद्यारण्य कृत 'पंचदशी' नामक ग्रन्थ की पंडित पीताम्बर कृत ब्रज-भाषा की एक टीका निर्णय सागर प्रेस बम्बई (सम्प्रति मुम्बई) से विक्रम संवत् (गु.) 1953 तुल्य ई0 सन् 1897 में छपी थी। इस टीका की भूमिका में उस समय तक के शृंगगिरिमठ के 56 आचार्यों की सूची प्रकाशित की गई है,जबकि शृंगगिरि मठ की वर्तमान सूची में अब तक के कुल 35 आचार्यों के ही नाम प्राप्त होते हैं,इस विरोधाभास का समाधान क्या है?

बिन्दु-८

ईसवी सन् पूर्व ५२१ से प्रवर्तित संवत् से सम्बन्धित अभिलेखीय साक्ष्य

पूर्वपक्ष

ईसवी सन् पूर्व ५२१ से प्रवर्तित संवत् का क्या कोई अभिलेखीय प्रमाण है?

उत्तरपक्ष

ईसवी सन् पूर्व 521 से प्रवर्तित संवत् कां उल्लेख हमें सम्राट् अशोक मौर्य के ब्रह्मंगिरि, रूपनाथ एवं सहरसा के लघु शिलाभिलेखों में प्राप्त होता है। अशोक के शाहबाज़गाढ़ी अभिलेख में कहा गया है कि अशोक ने अभिषिक्त होने के ढाई वर्ष बाद कलिंग पर विजय प्राप्त किया। यह सर्वविदित तथ्य है कि कलिंग विजय के पश्चात् ही अशोक बौद्ध मतावलम्बी हो गया। उसके ब्रह्मगिरि अभिलेख से ज्ञात होता है कि संवत् 256 तक अशोक को बौद्ध मत अपनाये ढाई वर्ष बीत चुके थे जिससे यह स्पष्ट होता है कि यह अभिलेख अशोक के राज्याभिषेक के पाँच वर्ष बाद लिखा गया। इस आधार पर सम्राट् अशोक का राज्याभिषेक उक्त संवत् के 251वें वर्ष में होना निश्चित होता है। डॉ. विद्याधर महाजन के अनुसार अशोक का राज्याभिषेक ई. पू. 269 में हुआ था । इससे प्रकट होता है कि उक्त सम्वत् का प्रचलन ई0पू0 269 से 252 वर्ष पूर्व अर्थात् ई.पू. 521 में हुआ था । यहाँ पर ई. सन् तथा उक्त सम्वत् में 251 वर्ष का अन्तर प्राप्त होता है । इस आधार पर उक्त सम्वत् का प्रवर्तन ई.सन् पूर्व का 252वाँ वर्ष सिद्ध होता है जिस प्रकार से विक्रम सम्वत् तथा ईसवीय सन् के मध्य 57 वर्ष का अन्तर प्राप्त होने पर विक्रम सम्वत् का प्रवर्तन ईसवी सन् पूर्व 58 माना जाता है। डॉ. भण्डारकर इस संवत् को गौतम बुद्ध के जन्म से सम्बन्धित किसी घटना से जुड़ा मानते हैं परन्तु उनका यह मत उचित नहीं है। यह संवत् विक्रमादित्य=चण्डप्रद्योत के राज्याभिषेक से जुड़ा है।

बिन्दु-९

कम्बोज राजा जयवर्मन् (तृतीय) के अभिलेख के शङ्कर

० पूर्वपक्ष

कम्बोज राजा जयवर्मन (तृतीय) के राजगुरु शिवसोम थे। शिवसोम के गुरु भगवत्पाद शङ्कर थे। राजा जयवर्मन (तृतीय) का राज्याभिषेक ८८९ ई० सन् में हुआ था। इनके शिलालेख में शिवसोम के गुरु के लिये भगवत् शब्द का प्रयोग आचार्य शङ्कर की ओर सङ्केत करता है। इस आधार पर आदि शङ्कराचार्य का समय ईसवी सन् के नवम् शतक का प्रारम्भ होना चाहिए क्योंकि कोई भी पीठस्थ शङ्कराचार्य अपने नाम के साथ उपाधि के रूप में ही शङ्कराचार्य लिखते हैं नामात्मना नहीं!

उत्तरपक्ष

[42]इतिहासकार डॉ0 विद्याधर महाजन के ग्रन्थ 'प्राचीन भारत का इतिहास' तथा [43]बलदेव सहाय के ग्रन्थ 'भारतीय जहाजरानी-ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य' से ज्ञात होता है कि कम्बोज (=फूनान) के राजवंश का संस्थापक कौण्डिन्य भारत का रहने वाला था जिसने समुद्र मार्ग से फूनान जाकर वहाँ एक नये राजवंश की नींव डाली। [44]'महावंश' से ज्ञात होता है कि कलिंग से निर्वासित राजकुमार विजय ने ई0पू0 5वीं सदी में समुद्रमार्ग से श्रीलंका जाकर वहाँ अपना राज्य स्थापित किया। इससे स्पष्ट हो जाता है कि कलिंग (सम्प्रति उड़ीसा प्रान्त) से पूर्व समुद्र तट से समुद्र मार्ग का अवलम्बन लेकर कम्बोज व श्रीलंका में दो भारतीय वीरों ने दो अलग-अलग राजवंशों की नींव डाली।

गोवर्द्धनमठ-पुरी की आचार्यावली से ज्ञात होता है कि ई0 सन् 871 से ई0 सन् 885 तक उस पीठ पर शङ्कर नामक 81वें आचार्य शङ्कराचार्य के पद पर विराजमान थे। निश्चित रूप से शिवसोम के गुरु यही भगवत् शङ्कर थे। भगवत् विशेषण का प्रयोग सभी शङ्कराचार्यों के शिष्यों द्वारा अपने गुरुओं के सम्मानार्थ किया जाता है । कलिंग से कम्बोज राजवंश का घनिष्ठ सम्बन्ध होने के कारण यह निश्चित है कि गोवर्द्धन मठ-पुरी के ही शङ्कराचार्य शङ्कर के शिवसोम शिष्य थे।

[45]उपर्युक्त अभिलेख में यह कहा गया है कि शिवसोम ने 'भगवत् शङ्कर के अधीन शास्त्र पढ़े जिनके चरणों में ऋषि भी सिर झुकाते थे।' आदिशङ्कराचार्य के पास न तो एक स्थान पर बैठ कर किसी को शास्त्र पढ़ाने का समय था और न ही उनके किसी शिष्य का नाम शिवसोम प्राप्त होता है। आदिशङ्कराचार्य के समय भारत के विद्वानों ने उनके साथ जमकर शास्त्रार्थ किया था और उन सभी वादियों को आचार्य ने परास्त कर दिया था जिसके कारण उनके द्वारा स्थापित चार पीठों के शङ्कराचार्यों को उनकी प्रतिमूर्ति मानकर ऋषिगण भी प्रणाम करने लगे। अतः यह अन्तिम रूप से कहा जा सकता है कि पुरी के 81वें शङ्कराचार्य शङ्कर से शिवसोम ने शास्त्र पढ़ा था।

यह मान लेना कि आदिशङ्कराचार्य के पश्चात् शङ्कर नामधारी कोई अन्य परिव्राजक शङ्कराचार्य हुआ ही नहीं, कोरा भ्रम है। श्री गोवर्द्धनमठ-पुरी के 29वें व 81वें शङ्कराचार्य का नाम शङ्कर था। शृङ्गगिरि मठ की एक अपेक्षाकृत प्राचीन सूची में शङ्कर नाम के 8 तथा विद्याशङ्कर नाम के 2 आचार्यों के नाम उपलब्ध हैं। शृङ्गगिरि मठ की अर्वाचीन सूची में 9 वें आचार्य का नाम विद्याशङ्कर तथा 16वें आचार्य का नाम शङ्कर आनन्द है । श्री शारदामठ-द्वारका के 36वें आचार्य का नाम विद्याशङ्कर था। अतएव शङ्कर नामधारी विभिन्न शङ्कराचार्यों के काल को आदिशङ्कराचार्य का आविर्भाव काल मान लेना एक भयंकर भूल है।

बिन्दु-१०

शङ्कर नामक शङ्कराचार्यों के आविर्भाव काल

० पूर्वपक्ष -

हमें तो शङ्कर नामधारी एक ही शङ्कराचार्य का आविर्भाव काल कलि संवत् ३८८९ विभव वर्ष तथा कैलाश गमन कलि संवत् ३९२१ वैशाख पूर्णिमा अर्थात् ई० सन् ७८८-८२० ज्ञात है, यदि शङ्कर नामधारी अन्य शङ्कराचार्य हुए हैं तो उनमें से किसी के आविर्भाव काल का कहीं तो उल्लेख होना चाहिए ?

उत्तरपक्ष -

आपकी जानकारी ही ज्ञान की अन्तिम सीमा नहीं है, अस्तु आपके भ्रमोच्छेदन हेतु कुछ शङ्कर नामधारी शङ्कराचार्यों का आविर्भाव काल प्रस्तुत कर रहे हैं -

1-शारदामठ-द्वारका के द्वितीय शङ्कराचार्य द्वारा लिखित शङ्कर विजय में आदि शङ्कराचार्य का आविर्भाव-काल निम्न प्रकार से वर्णित है ।

[46]"ततः सा दशम मासि सम्पूर्णशुभलक्षणे।
षड्विंशशतके श्रीमद्युधिष्ठिरशकस्य वै ॥
एकत्रिंशेऽथवर्षे तु हायने नन्दने शुभें।
मेषराशिं गते सूर्ये वैशाखे मासि शोभने॥
शुक्ले पक्षे पञ्चम्यां तिथौ भास्करवासरे ।
पुनर्वसुगते चन्द्रे लग्ने कर्कटाह्वये॥
मध्याह्ने चाभिजिन्नाम मुहूर्ते शुभवीक्षिते ।
स्वोच्चस्थे केन्द्रस्थे च गुरौमन्दे कुजे रवौ॥
निजतुंगगते रविणा संगते बुधे ।
प्रासूत तनयं साध्वी गिरिजेव षडाननम् ॥

अर्थात् युधिष्ठिर शक सम्वत् 2631 (= ई.सन् पूर्व 507) नन्दन वर्ष वैशाख शुक्ल पञ्चमी रविवार को आदिशङ्कराचार्य का जन्म हुआ।

2. [47]सदानन्द स्वामी कृत शङ्करदिग्विजय ग्रन्थ के अनुसार कलि सम्वत् 2771 (=ईसवी सन् पूर्व 331) सर्वजित् नामक संवत्सर में पौष मास में जब पाँच ग्रह उच्चस्थिति में थे तब शुभ लग्न में शङ्कराचार्य का अवतार हुआ। गणना करने पर उक्त काल में पाँच ग्रहों का उच्च स्थानीय योग प्रमाणित हुआ।

3. [48]माधवीय शङ्कर दिग्विजय ग्रन्थ के अनुसार शुभ ग्रहों से युक्त शुभ लग्न में और शुभ राशि से देखे जाने पर तथा सूर्य, मङ्गल और शनि के उच्च होने पर तथा गुरु के केन्द्र में स्थित होने पर शङ्कराचार्य का जन्म हुआ।

सूर्य मेष राशि में शनि तुला राशि में व मङ्गल मकर राशि में स्थित होने पर उच्च के माने जाते हैं। कुण्डली के प्रथम, चतुर्थ, सप्तम तथा दशम स्थान को केन्द्र कहते हैं।

[49]गणना करने पर यह सिद्ध हुआ कि कलि संवत् 2815 तुल्य ईसवी सन् पूर्व 287 में वैशाख शुक्ल पञ्चमी के दिन गुरु कर्क में, सूर्य मेष में, शनि तुला में तथा चन्द्र व मङ्गल मकर में स्थित थे।

4. [50]दक्षिण देशस्थ स्कन्दपुर नरेश की हस्तलिखित पुस्तक 'कोङ्ग देश का इतिहास' के अनुसार ईसवी सन् 178 में उपस्थित राजा विक्रमदेव के शासनकाल में

शङ्कराचार्य का जन्म हुआ था।

5. [51]महानुभाव सम्प्रदाय के ग्रन्थ 'दर्शन प्रकाश' में, जिसका रचना काल 1638 ई0 है एक प्राचीन ग्रन्थ 'शङ्कर पद्धति' के अनुसार लिखा गया है-

युग्म पयोधि रसामिति शाके रौद्रक वत्सर ऊर्जक मासे...
शङ्कर लोकमगान्निजदेहं हेमगिरौ प्रविहाय हठेन'

अर्थात् इन शङ्कर का कैलाश गमन शक संवत् 142 तुल्य ईसवी सन् 220 में हुआ था। परन्तु यदि 'रसा' का अर्थ पृथ्वी=1 न कर रसातल =6 किया जाय तब इनका कैलाश गमन काल शक संवत् 642 तुल्य ईसवी सन् 720 प्राप्त होता है। सम्भवतः स्कन्दपुर नरेश द्वारा वर्णित शङ्कर और महानुभाव सम्प्रदाय के ग्रन्थ में वर्णित शङ्कर अभिन्न हैं।

6. [52]काशीनाथ त्र्यम्बक तेलंग के अनुसार केरलोत्पत्ति नामक ग्रन्थ में शङ्कराचार्य का जन्म ईसवी सन् 400 लिखा है। वहाँ पर यह भी उल्लेख है कि ये शङ्कराचार्य 38 वर्ष तक इस धराधाम पर रहे।

7. [53] शङ्कर (द्वितीय) के नाम से विख्यात विद्याशङ्कर भारती नामक शङ्कराचार्य का जन्म शालिवाहन शक संवत् 421 तुल्य ईसवी सन् 499 प्रमाथि वर्ष में माघकृष्ण चतुर्दशी को मलयाक में तथा ब्रह्मीभाव शालिवाहन शक सम्वत् 491 तुल्य ईसवी सन् 569 विरोधी वर्ष में कार्तिक शुक्ल त्रयोदशी शुक्रवार के दिन कीकट में हुआ। ये शृङ्गगिरि मठ के अधिपति विद्यानृसिंह पतिराड् भारती के शिष्य थे।

8. [54]वेणु ग्राम के गोविन्द भट्ट हेरलेकर द्वारा उपलब्ध करायी गई बाल-बोध शैली में लिखित तीन पत्रों वाली अनाम लेखक की एक पुस्तिका के अनुसार-

दुष्टाचारविनाशाय प्रादुर्भूतो महीतले
स एव शङ्कराचार्यः साक्षात् कैवल्य नायकः।
निधिनागे वह्न्यब्दे विभवे शङ्करोदयः।

तथा एक अन्य स्रोत के अनुसार -

कल्यब्दे चन्द्रनेताङ्क वह्न्यब्दे गुहा प्रवेशः,
वैशाखे पूर्णिमायां तु शङ्करः शिवतामगाद्।

अर्थात् कलि संवत् 3889 तुल्य ईसवी सन् 788 विभव नामक वर्ष में शङ्कराचार्य का जन्म तथा कलि संवत् 3921 तुल्य ईसवी सन् 820 वैशाख पूर्णिमा के दिन

शिवलोक गमन हुआ। इसी पुस्तिका का उद्धरण देकर बेलगाम के विष्णु महादेव पाठक ने इण्डियन एण्टीक्वेरी खण्ड 11 पृष्ठ 263 (जून 1882 अङ्क) में आदिशङ्कराचार्य का आविर्भाव काल 788 ई० सन् व कैलाश गमन 820 ई० सन् माना है।

उपर्युक्त विवरणों से स्पष्ट हो जाता है कि आदि शङ्कराचार्य की जीवनी लिखते समय जिस लेखक के पास जिस किसी भी प्राचीन शङ्कराचार्य का जीवनकाल या ब्रह्मलीन काल उपलब्ध था उसने उसी काल को आदिशङ्कराचार्य का काल मानकर उनके जीवन चरित्र में उस काल का समावेश कर उनके आविर्भाव काल की गुत्थी को अत्यधिक उलझा दिया। परन्तु इन विभिन्न कालों के सूक्ष्म अवलोकन से हमें स्पष्ट हो जाता है कि चित्सुखाचार्य द्वारा उल्लिखित काल आदिशङ्कराचार्य का काल तथा अन्यों द्वारा उल्लिखित अन्य काल परवर्ती शङ्कराचार्यों से सम्बन्धित हैं।

बिन्दु-११

शङ्कराचार्य की उपाधि

पूर्वपक्ष

चारों मठों का जो एक साथ नेतृत्व करे वे शङ्कराचार्य पदोपाधिक होते हैं और प्रत्येक के आचार्य सुरेश्वराचार्य, तोटकाचार्य, पद्मपादाचार्य और हस्तमलकाचार्य होते हैं। ऐसी स्थिति में प्रत्येक पीठ पर बैठे हुए आचार्य को शङ्कराचार्य की पदवी किस प्रकार? यह चिन्त्य है।

उत्तरपक्ष

आदिशङ्कराचार्य ने अपने जीवन के अन्तिम काल में मठाम्नाय-महानुशासनम् का विधान कर यह निश्चित कर दिया कि- [55] 'चारों आम्नाय मठों के आचार्यों को चाहिए कि वे लोगों से स्वधर्म का आचरण करावें तथा अन्यथा आचरण करने वालों को अनुशासित करें। शुद्ध मर्यादा वाला सन्यासी चारों पीठों की सत्ता का नियमानुसार अलग-अलग प्रयोग करे। जो पवित्र, जितेन्द्रिय, वेद तथा उसके अङ्गों आदि में पारङ्गत हो और सभी शास्त्रों में समन्वय की बुद्धि रखने वाला हो, वह मेरे पीठ का अधिकारी हो । उक्त लक्षणों से सम्पन्न सन्यासी मेरे पीठ पर आसीन हो तो उसे साक्षात् मुझे समझना चाहिए इसमें

'यस्यदेव' इत्यादि श्रुति प्रमाण है। कलियुग में मैं जगद्‌गुरु हूँ।'

उपर्युक्त विधान के फलस्वरूप चारों पीठों के आचार्य आदिशङ्कराचार्य के कैलाश गमन के पश्चात् उनके साक्षात् स्वरूप अर्थात् शङ्कराचार्य पदोपाधिक हो गये। चारों मठों का जो एक साथ नेतृत्व करे वह ही शङ्कराचार्य पदोपाधिक हो सकते हैं, यह कहना उचित नहीं है। चारों पीठों के पीठाधिपति तो एक ही काल में एक ही साथ आदिशङ्कराचार्य भी न थे। [56]ज्योतिष्पीठ बदरिकाश्रम की स्थापना ई0पू0 492 ज्येष्ठमास में, शारदापीठ-द्वारका की स्थापना ई0पू0 490 कार्तिक मास में, शृङ्गगिरिपीठ की स्थापना ई0पू0 490 फाल्गुन मास में तथा [57] गोवर्द्धनपीठ-पुरी की स्थापना ई0पू0 486 कार्तिक मास में आदिशङ्कराचार्य द्वारा की गई थी। [58] ई0पू0 489 में आदिशङ्कराचार्य ने शारदामठ द्वारका के आचार्य पद पर सुरेश्वराचार्य को अभिषिक्त कर दिया। उस समय तक श्रीगोवर्द्धनमठ की स्थापना नहीं हुई थी। [59] ई0पू0 486 में गोवर्द्धन मठ के आचार्य पद पर पद्मपादाचार्य तथा [60]ई0पू0 484 में ज्योतिर्मठ के आचार्य पद पर तोटकाचार्य व शृङ्गगिरि के आचार्य पद पर हस्तामलकाचार्य का उन्होंने अभिषेक कर दिया। उपर्युक्त तथ्यों से स्पष्ट होता है कि एक ही काल में एक ही साथ अधिक से अधिक तीन मठों के ही अधिपति आदिशङ्कराचार्य भी रहे चार के नहीं। पूर्व पक्षी की कसौटी पर तो आदि आचार्य शङ्कर भी शङ्कराचार्य नहीं सिद्ध होते!

बिन्दु-१२

चारों मठों के प्रथम आचार्यों के ग्रन्थ और शङ्कराचार्य उपाधि

पूर्वपक्ष

सुरेश्वराचार्य, पद्मपादाचार्य, तोटकाचार्य एवं हस्तमलकाचार्य ने स्वरचित ग्रन्थों में अपने नाम के बाद शङ्कराचार्य पद का प्रयोग क्यों नहीं किया है?

उत्तरपक्ष

आदिशङ्कराचार्य ने मठाम्नाय-महानुशासनम् की रचना अपने जीवन के अन्तिम काल में की थी। इस ग्रन्थ के द्वारा आचार्य शङ्कर ने यह विधान किया कि उनके कैलाश

गमन के पश्चात् उनके द्वारा स्थापित चार आम्नाय पीठों के पीठाधीश्वर स्वयं उनकी प्रतिमूर्ति समझे जायेंगे अर्थात् शङ्कराचार्य कहलायेंगे क्योंकि मठाम्नाय-महानुशासनम् में आचार्य का स्पष्ट वचन है कि कलियुगपर्यन्त वे जगद्गुरु रहेंगे। सम्राट् सुधन्वा के ताम्रपत्र से यह प्रमाणित होता है कि आदिशङ्कराचार्य विश्वेश्वर तथा जगद्गुरु इत्यादि उपाधियों से विभूषित् थे। यह सर्वविदित है कि आचार्य शङ्कर के उपर्युक्त चारों शिष्यों ने आचार्य के जीवनकाल में ही अपने-अपने ग्रन्थों का सृजन कर लिया था जबकि शङ्कराचार्य की उपाधि से वे आचार्य शङ्कर के कैलाश गमन के पश्चात् ही विभूषित हुए। ऐसी स्थिति में शङ्कराचार्य पद न धारण करने की स्थिति में वे स्वरचित ग्रन्थों में अपने नाम के पश्चात् शङ्कराचार्य कैसे लिखते?

बिन्दु-१३

शङ्कराचार्य उपाधि का प्रादुर्भाव-काल

पूर्वपक्ष

शङ्कराचार्य पदवी तो कुछ शतकों से हुई है। विद्यारण्य आदि ने अपने किसी ग्रन्थ में शङ्कराचार्य नाम या उपनाम नहीं लिखा है।

उत्तरपक्ष

शङ्कराचार्य उपाधि का प्रादुर्भाव तो आदिशङ्कराचार्य के कैलाश गमन के दिन से ही ई0पू0 475 वर्ष से मठाम्नाय-महानुशानम् के निर्देशानुसार हुआ। नेपाल के राजा वृषदेव वर्मा तथा वरदेव-के शासनकाल में शङ्कराचार्यों के नेपाल जाने का उल्लेख है। [61]राजा वृषदेव वर्मा की जिस समय मृत्यु हुई थी उसी समय आदिशङ्कराचार्य नेपाल ई0पू0 487 में पहुँचे थे। एक अन्य शङ्कराचार्य राजा वरदेव के शासनकाल में कलि संवत् 3623 तुल्य ई0 सन् 521 में नेपाल यह देखने गये थे कि आदिशङ्कराचार्य द्वारा स्थापित व्यवस्था वहाँ चल रही थी कि नहीं । अभिलेखों के आधार पर राजा वरदेव की उपस्थिति ई0सन् 297 में सिद्ध होती है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि शङ्कराचार्य की उपाधि का प्रचलन बहुत पहले से है न कि कुछ शतकों से।

[62]विद्यारण्य स्वामी की एक रचना है 'दृग्दृश्यविवेक'। इस ग्रन्थ की आनन्द ज्ञान कृत टीका सहित एक प्राचीन हस्तलिखित प्रति में इसे शङ्कराचार्य रचित कहा गया है। विद्यारण्य स्वामी ने1331ई.सन् में सन्यास ग्रहण किया था तथा 1380 ई0 सन् से1386 ई0 सन् तक वे शृङ्गगिरिमठ के शङ्कराचार्य रहे। दृग्दृश्यविवेक सम्भवतः इन्होंने शङ्कराचार्य बनने के बाद लिखा था जिसके कारण आनन्दज्ञान कृत टीका में इस ग्रन्थ को शङ्कराचार्य विरचित लिखा गया है परन्तु शेष ग्रन्थ निश्चित रूप से उनके शङ्कराचार्य बनने के पूर्व के लिखे हुये हैं। जिसके कारण पञ्चदशी आदि ग्रन्थों में इन ग्रन्थों को शङ्कराचार्य विरचित न लिख कर स्वामी विद्यारण्य मुनि विरचित कहा गया है।

[63] 'देव्यपराधक्षमापनस्तोत्रम् ' शङ्कराचार्य विरचित है। स्तोत्र में इनके रचयिता शङ्कराचार्य ने अपनी आयु पचासी वर्ष से अधिक कहा है जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि इस स्तोत्र के रचनाकार आदिशङ्कराचार्य न होकर अन्य परवर्ती शङ्कराचार्य थे। बहुसंख्यक विद्वान् इस स्तोत्र के रचयिता विद्यारण्य मुनि को मानते हैं।

मठाम्नाय-महानुशासनम्, नेपाल की राजवंशावली, देव्यपराधक्षमापन स्तोत्रम् एवं दृग्दृश्यविवेक की आनन्दज्ञान कृत टीका सहित उसकी प्राचीन पाण्डुलिपि के प्रमाणों से यह सिद्ध हो जाता है कि चार आम्नाय पीठों,शारदामठ-द्वारका, गोवर्द्धनमठ-पुरी, ज्योतिर्मठ-बदरिकाश्रम तथा शृङ्गगिरि मठ- के पीठाधीश्वरों द्वारा शङ्कराचार्य लिखने की परम्परा आदिशङ्कराचार्य के कैलाश गमन के दिन से ई0पू0 475 से चली आ रही है।

बिन्दु-१४

कार्षापणमुद्रा के प्रमाण से आदि शङ्कराचार्य का आविर्भाव-काल

पूर्वपक्ष

ब्रह्म-सूत्र के तर्कपाद भाष्य में बौद्धमत निराकरण के अवसर पर आदिशङ्कराचार्य ने एक श्लोकार्द्ध -

'यदन्तर्ज्ञेयरूपं तद् बहिर्वदवभासते'

उद्धृत किया है जो कि बौद्धाचार्य दिङ्नाग की 'आलम्बन परीक्षा' में इस प्रकार है -

'यदन्तर्ज्ञेयरूपं तद् बहिर्वदवभासते।
सोऽर्थो विज्ञान रूपत्वात् तत्प्रत्ययतयापि च'॥

वहीं तर्कपाद में शङ्कराचार्य ने एक अन्य श्लोकार्द्ध -

'सहोपलम्भनियमादभेदो विषयकिंज्ञानयोः'

उद्धृत किया है जो कि बौद्धाचार्य धर्मकीर्ति के ग्रन्थ 'वाद न्याय' में इस प्रकार है-

'सहोपलम्भनियमादभेदो नीलतद्धियोः
भेदश्च भ्रान्तविज्ञानैर्दृश्यतेन्दाविवाद्वये।'

इसका पूर्वार्द्ध प्रमाणविनिश्चय में तथा उत्तरार्द्ध प्रमाण वार्तिक में उपलब्ध होता है। कोई कह सकता है कि यहाँ के पूर्वपक्ष श्लोक को धर्मकीर्ति ने उठाया। अपने सिद्धान्तार्थ से तो यह केवल इतिहास पर धूल डालना ही नहीं बल्कि एक सुप्रतिष्ठित विद्वान् पर चोरी का कलङ्क लगाना ही है। दिङ्नाग ईसवी सन् की ५वीं सदी तथा धर्मकीर्ति ईसवी सन् की ७वीं सदी में हुए थे। ऐसी स्थिति में दिङ्नाग और धर्मकीर्ति के श्लोकों को उद्धृत करने वाले आदिशङ्कराचार्य ईसा की ८वीं सदी के ही सिद्ध होते हैं!

उत्तरपक्ष

मात्र पंक्तिसाम्य के आधार पर कौन पूर्ववर्ती है कौन अनुवर्ती है यह निर्णय नहीं किया जा सकता है। जब कुछ अक्षरशः और कुछ शब्दतः उद्धरण दो विद्वानों के ग्रन्थों में प्राप्त होते हैं तब उनमें से कौन पूर्ववर्ती है और कौन अनुवर्ती इसका निर्धारण करने के लिये हमें उन विद्वानों की कृतियों में उपलब्ध अन्य तथ्यों को अभिलेखीय प्रमाणों की कसौटी पर कस कर उनके कालों का विनिश्चयन करना पड़ता है।

आदिशङ्कराचार्य ने अपने माण्डूक्य उपनिषद् भाष्य में आत्मा के चार पादों की व्याख्या करते हुए कहा है-

[64]'सोऽयमात्मोङ्काराभिधेयः
परापरत्वेन व्यस्थितश्चतुष्पात्कार्षापणवन्न गौरिवेति।'

अर्थात् 'ओंकार नाम से कहा जाने वाला तथा पर और अपररूप से व्यवस्थित वह यह आत्मा कार्षापण के समान चार पाद (अंश) वाला है, गौ के समान नहीं'।

कार्षापण प्राचीन काल में भारतवर्ष में प्रचलित एक मुद्रा थी। कार्षापण मुद्रा का चतुर्थांश पाद कहलाता था। आदिशङ्कराचार्य ने सर्वसामान्य को आत्मा के चार पादों का वास्तविक तात्पर्य समझाने हेतु जिस प्रकार से कार्षापण के पाद का उल्लेख किया है उससे यह स्वतः स्पष्ट हो जाता है कि भाष्यकार के समय में कार्षापण सम्पूर्ण भारतवर्ष में प्रचलित मुद्रा थी।

[65]कनिंघम के अनुसार कार्षापण मुद्रा का प्रचलन भारतवर्ष में ईसवी सन् पूर्व 1000 से प्रारम्भ हुआ। डॉ0 अनन्त सदाशिव अल्तेकर, डॉ0 एस0 के0 चक्रवर्ती तथा डॉ0 वासुदेव उपाध्याय कार्षापण मुद्रा का प्रचलन कम से कम ई0 सन् पूर्व 800 से मानते हैं। पाणिनि के अष्टाध्यायी, पतञ्जलि के महाभाष्य, वात्स्यायन के कामसूत्र, बौद्ध ग्रन्थ महावग्ग, विनय पिटक आदि में कार्षापण का प्रचलित मुद्रा के रूप में उल्लेख है। ईसापूर्व चौथी सदी में चन्द्रगुप्त मौर्य के काल से इस मुद्रा का निर्माण बन्द हो गया तथा इसका स्थान पण नामक मुद्रा ने ले लिया जिसका उल्लेख कौटिल्य के अर्थशास्त्र में है। उत्तर भारत में सम्राट् अशोक एवं उनके परवर्ती काल के उपलब्ध अभिलेखों में कार्षापण मुद्रा का उल्लेख न होना यह प्रमाणित कर देता है कि मौर्यों के समय से ही यह मुद्रा उत्तर भारत में प्रचलन से बाहर हो गयी थी। दक्षिण भारत से प्राप्त रानी नायनिका के नाणेघाट अभिलेख तथा ईश्वरसेन आभीर के नासिक लयण अभिलेख में कार्षापण मुद्रा का उल्लेख मिलता है परन्तु अन्य पश्चातवर्ती अभिलेखों में इस मुद्रा का उल्लेख न मिलना इस बात को प्रमाणित कर देता है कि दक्षिण भारत में भी कार्षापण का प्रचलन ईश्वरसेन आभीर के पश्चात् बन्द हो गया। इतिहासकार इसका काल ई0 सन् की द्वितीय सदी का अन्तिम दशक मानते हैं। नवीनतम अनुसन्धानों के आलोक में इसका काल ई0 पूर्व ज्ञात हुआ है। ऐसी स्थिति में कार्षापण मुद्रा जिसके समय में सम्पूर्ण भारतवर्ष में प्रचलित थी वे आदिशङ्कराचार्य ई0सन् 5वीं एवं 7वीं सदी के दिङ्नाग तथा धर्मकीर्ति के पंक्तियों को कैसे उद्धृत कर सकते हैं? ये पंक्तियाँ या तो आदिशङ्कराचार्य की हैं या किसी पूर्ववर्ती बुद्ध की।

उपर्युक्त विवरणों, तथ्यों एवं विवेचनों के आलोक में श्रीमान् उदयवीर शास्त्री का यह कथन अक्षरशः सत्य है कि - इस प्रकार यत्किंचित् पंक्तिसाम्य को लेकर उसे धर्मकीर्ति के वचन का उद्धरण मानना ऐतिहासिक तथ्यों के साथ अन्याय है तथा यह सभी विषय दिङ्नाग एवं धर्मकीर्ति आदि के मौलिक चिन्तन नहीं है, उनके पूर्वाचार्यों ने भी इस पर विचार किया है।

बिन्दु-१९

स्रुघ्न नगर के प्रमाण से आदि शङ्कराचार्य का आविर्भाव-काल

o पूर्वपक्ष

क्या आदिशङ्कराचार्य कृत ग्रन्थों में ऐसे किसी तथ्य का उल्लेख है जिसके आधार पर दिङ्नाग और धर्मकीर्ति के वे पूर्ववर्ती सिद्ध होते हैं ?

उत्तरपक्ष

आदिशङ्कराचार्य ने अपने ब्रह्मसूत्र भाष्य में विषयों को सहज बोधगम्य बनाने के लिए कुछ पंक्तियों का सृजन स्थानों एवं राजमार्गों का उल्लेख करते हुए किया है यथा-

[66] अथ प्रत्यवयंवर्तेत तदैकत्र व्यापारेऽन्यत्राव्यापारः स्यात्। न हि देवदत्तः स्रुघ्ने संनिधीयमानस्तदहरेव पाटलिपुत्रेऽपि संनिधीयते। युगपदनेकत्र वृत्तानेकत्वप्रसङ्गः स्यात्। देवदत्तयज्ञदत्तयोरिव स्रुघ्न पाटलिपुत्रनिवासिनोः।

अर्थात् - यदि कार्य अवयवी प्रत्येक अवयव में रहेगा, तो एक स्थान पर व्यापार होने पर दूसरे स्थान पर व्यापार न होगा। क्योंकि स्रुघ्न में रहता हुआ देवदत्त उसी दिन पाटलिपुत्र में नहीं रह सकता। यदि युगपत् अनेक स्थानों में रहेगा, तो स्रुघ्न और पाटलिपुत्र निवासी देवदत्त और यज्ञदत्त के समान उसमें अनेकत्व का प्रसंग आ जाएगा।'

और भी -

[67] योऽपि स्रुघ्नान्मथुरां गत्वा मथुरायाः पाटलिपुत्रं व्रजति सोऽपि स्रुघ्नात्पाटलिपुत्रं यातीति शक्यते वदितुम्। तस्मात् 'प्राणस्तेजसी'ति प्राणसंपृक्तस्याध्यक्षस्यैवैतत्तेजः सहचरितेषु भूतेष्ववस्थानम्।

अर्थात् जो भी स्रुघ्न से मथुरा जाकर मथुरा से पाटलिपुत्र जाता है वह भी स्रुघ्न से पाटलिपुत्र जाता है ऐसा कहा जा सकता है। इसलिए 'प्राणस्तेजसि' इससे प्राण सम्बद्ध जीव का भी तेज सहचरित भूतों में यह अवस्थान है।

उपर्युक्त दृष्टान्तों से स्वतः द्योतित होता है कि स्रुघ्न और पाटलिपुत्र आदिशङ्कराचार्य के समय के दो प्रसिद्ध नगर थे तथा स्रुघ्न से मथुरा होते हुए पाटलिपुत्र जाने वाला मार्ग उनके समय में एक प्रसिद्ध राजपथ था।

[68] स्रुघ्न की पहचान वर्तमान समय में हरियाणा प्रान्त के यमुनानगर जनपद में जगाधरी के निकट सुघ नामक ग्राम से की जाती है। आज सुघ, मण्डलपुर, दयालगढ़ एवं बुरिया नामक गांव प्राचीन स्रुघ्न नगर की भूमि पर ही बसे हैं। यहाँ से उत्खनन में पायी गयी बुद्धकालीन मुद्राओं, कार्षापण तथा पतञ्जलि के महाभाष्य में उपलब्ध विवरणों से स्पष्ट होता है कि पतञ्जलि एवं गौतम बुद्ध के समय में स्रुघ्न एक प्रसिद्ध नगर था। उत्खनन से प्राप्त सामग्रियों से यह भी ज्ञात होता है कि शुङ्गकाल के अंतिम वर्षों से कुषाणकाल तक स्रुघ्न ह्रासोन्मुख दशा में था और ईसवी सन् की तीसरी सदी में स्रुघ्न नगर पूर्णरूपेण विनष्ट हो चुका था। चीनी यात्री ह्वेनसाङ्ग भी अपने विवरणों में स्रुघ्न नामक क्षेत्र का उल्लेख करते हुए लिखता है कि इस क्षेत्र की राजधानी स्रुघ्न नगर का विनाश उसकी भारत यात्रा के बहुत समय पूर्व हो चुका था।

स्रुघ्न का जीवन्त नगर के रूप में उल्लेख करने वाले आदिशङ्कराचार्य पाँचवीं सदी के दिङ्नाग तथा सातवीं सदी के धर्मकीर्ति के पूर्ववर्ती सिद्ध होते हैं। ऐसी स्थिति में उनके द्वारा दिङ्नाग और धर्मकीर्ति की पंक्तियों को उद्धृत करने का प्रश्न ही नहीं उठता।

बिन्दु-१६

सुरेश्वराचार्य व धर्मकीर्ति सागरघोष बुद्ध

पूर्वपक्ष

आदिशङ्कराचार्य ने अपने ग्रन्थ उपदेश-साहस्री में धर्मकीर्ति का एक पूरा श्लोक लिखा है यथा-

'अभिन्नोऽपि हि बुद्ध्यात्मा विपर्यसितदर्शनैः।
ग्राह्यग्राहकसंवित्तिभेदवानिव लक्ष्यते ॥(उप. 18/142)

इसी श्लोक को बृहदारण्यक वार्तिक ४३/४७६ में भी पूर्वपक्ष रूप से उठाया गया है, जिसकी व्याख्या में आनन्द गिरि ने इस श्लोक को कीर्तिवाक्य बताया है। यह कीर्ति कोई अन्य नहीं

धर्मकीर्ति ही थे। एक जगह सुरेश्वराचार्य ने साक्षात् इनका नाम ले लिया है यथा-

त्रिष्वेव त्वविनाभावादिति यद्धर्मकीर्तिना।
प्रत्यज्ञापि प्रतिज्ञेयं हीयेतासौ न संशयः ॥ (बृ.वा./43/753)

उत्तरपक्ष -

प्राचीन काल में धर्मकीर्तिसागर घोष नामक एक बुद्ध हुए हैं। तिब्बत् में इनकी खूब पूजा की जाती है। इन धर्मकीर्तिसागरघोष बुद्ध का उल्लेख न्यूयार्क से 1939 ई0 सन् में प्रकाशित पुस्तक 'द इकोनोग्राफी ऑफ तिब्बतन लामाइज्म' तथा 1986 ई0 में दिल्ली से प्रकाशित पुस्तक 'द आदि बुद्ध' में प्राप्त है। 'द आदि बुद्ध' में नौ बुद्धों की एक सूची में इन बुद्ध का नाम सातवें क्रम पर तथा शिखी बुद्ध का नाम नौवें क्रम पर सूचीबद्ध है। शिखी बुद्ध का गौतम बुद्ध ने अपने पूर्ववर्ती बुद्ध के रूप में उल्लेख किया है ऐसी स्थिति में धर्मकीर्तिसागर घोष बुद्ध स्वतः गौतम बुद्ध के पूर्ववर्ती सिद्ध हो जाते हैं। अतएव इसमें रंच मात्र भी सन्देह नहीं कि आदिशङ्कराचार्य के शिष्य सुरेश्वराचार्य द्वारा पूर्वपक्ष के रूप में उठाया गया उद्धरण धर्मकीर्तिसागर घोष नामक बुद्ध का साक्षात् वचन है न कि तथाकथित ईसवी सन् की सातवीं सदी में होने वाले बौद्ध विद्वान् धर्मकीर्ति का। इन बौद्ध विद्वान् धर्मकीर्ति ने भी आचार्य व सुरेश्वराचार्य द्वारा उद्धृत पूर्ववर्ती बुद्ध, धर्मकीर्तिसागर घोष के उपर्युक्त वचनों को अपने ग्रन्थ में संग्रहित किया है। यह भी न्याय है कि उच्छेद मूल पर किया जाता है शाखा पर नहीं। अतः आदिशङ्कराचार्य तथा सुरेश्वराचार्य ने पूर्ववर्ती बुद्धों के ही वचनों का खण्डन किया है यही मानना न्यायोचित है।

बिन्दु-१८

वाचस्पति और दिङ्नाग

पूर्वपक्ष

अब वाचस्पति मिश्र की "न्यायतात्पर्य टीका" की ये पंक्तियाँ बाँचिये-

"यद्यपि भाष्यकृता कृतव्युत्पादनमेतत्
तथापि दिङ्नागप्रभृतिरर्वाचीनैः कुहेत
सन्तमसमुत्थापनेनाच्छादितं शास्त्रम् ....।"

दिङ्नाग ईसवी सन् की चौथी सदी के अन्त में या ५वीं सदी के प्रारम्भ में हुए थे। वाचस्पति मिश्र ने 'न्यायसूचीनिबन्ध' का रचना काल (विक्रम) संवत् ८९८ लिखा है। उपर्युक्त पंक्ति में 'अर्वाचीनैः' यह पद विचारणीय है। अर्वाचीन का प्रयोग नव्य अर्थ में होता है, केवल परवर्ती अर्थ हो तो वह स्वतः सिद्ध होने से व्यर्थ होगा। अतः अर्वाचीन पद सम्बद्ध व्यक्ति से काफी बाद और अपने से थोड़ा पीछे होने में ही प्रयुक्त हुआ है। यहाँ भाष्यकार से दिङ्नाग दो तीन सौ वर्ष बाद में और वाचस्पति मिश्र, दिङ्नाग से १६-१७ सौ वर्ष बाद ऐसी स्थिति में अर्वाचीन पद सर्वथा असंगत होगा!

उत्तरपक्ष

अक्षपाद गौतम के 'न्याय सूत्र' के भाष्यकार वात्स्यायन जो कि 'कामसूत्र' प्रणेता वात्स्यायन से भिन्न थे ईसवी सन् पूर्व की चतुर्थ सदी में हुए थे। "श्रीमद्भागवत महापुराण से ज्ञात होता है कि इन वात्स्यायन का नाम कौटिल्य व चाणक्य भी था तथा इन्होंने नन्द और उसके सुमाल्य आदि पुत्रों का नाश कर चन्द्रगुप्त को राजा बनाया था।

इस प्रकार वात्स्यायन तथा दिङ्नाग के मध्य लगभग 800 वर्ष और दिङ्नाग एवं वाचस्पति मिश्र के मध्य लगभग 300 वर्ष का अन्तराल प्राप्त होता है। ऐसी स्थिति में न्याय भाष्यकार वात्स्यायन से काफी बाद में तथा न्याय तात्पर्य टीकाकार वाचस्पति मिश्र से कुछ पहले होने के कारण उपर्युक्त पंक्ति में 'अर्वाचीन' शब्द का प्रयोग सर्वथा उचित है। पूर्वपक्षी द्वारा प्रस्तुत तर्क अयुक्तियुक्त व असंगत है।

बिन्दु-१८

पङ्क्तिसाम्य के आधार पर काल निर्धारण एक अवैज्ञानिक व अविश्वसनीय पद्धति

पूर्वपक्ष

यह अत्यन्त सुप्रसिद्ध है कि भर्तृहरि विक्रमादित्य के बड़े भाई थे। वे महान् वैयाकरण थे। स्फोटवाद के प्रवर्तक नहीं तो भी स्फुट वर्णन करने वाले भर्तृहरि ही प्रसिद्ध हैं। अतएव स्फोटवाद का

खण्डन या मण्डन जो भी करना हो उसके लिये भर्तृहरि का ही उदाहरण प्रायः सभी आचार्य देते हैं, चाहे वे वैदिक हों चाहे बौद्ध। स्फोटवाद का खण्डन आचार्य ने शारीरकभाष्य में किया है। यद्यपि वहाँ भर्तृहरि का नाम नहीं लिया गया है फिर भी भर्तृहरि प्रतिपादित सिद्धान्त पर सम्यक् विचार किया है। इतना ही नहीं, आचार्य के समकालिक रूप से प्रसिद्ध कुमारिलभट्ट व मण्डन मिश्र ने वाक्यपदीय के श्लोकों का उद्धरण दिया है -

'तत्वावबोधः शब्दानां नास्ति व्याकरणादृते'॥1/13॥

इस वाक्यपदीय श्लोक का उद्धरण देकर कुमारिल ने व्यंग्य किया है कि

'अतएव श्लोकोत्तरार्ध वक्तव्यम्
तत्वावबोधः शब्दानां नास्ति श्रोत्रेन्द्रियादृते।'

अन्य भी कई उद्धरण कहीं पूर्वपक्ष में व कहीं संवाद पक्ष में दिया गया है। आचार्य के समकालीन मण्डन मिश्र ने ब्रह्मसिद्धि में-

'सत्यमाकृतिसंहारे यदन्ते व्यवतिष्ठते'

इस प्रकार अपने समर्थन में हरिकारिका का उद्धरण दिया है। भर्तृहरि को हरि भी कहते हैं। विक्रम संवत् प्रवर्तक विक्रमादित्य का बड़ा भाई होने के कारण भर्तृहरि को ईसवी सन् पूर्व की प्रथम शताब्दी के पूर्व ले जाने को कोई तैयार नहीं है। इससे आचार्य शङ्कर को ईसवी सन् पञ्चम या षष्ठ शताब्दी में ले जाने वाले पक्षधरों की बात पूरी तरह से कट जाती है?

उत्तरपक्ष

[71]सर्वप्रथम तो आपको हम यह बता दें कि स्फोटवाद के प्रवर्तक स्फोटायन नामक वैय्याकरण थे। उनका स्थितिकाल 2800 विक्रम संवत् पूर्व था। पाणिनि ने अष्टाध्यायी 6/1/123 में इसका उल्लेख किया है यथा - 'अवङ् स्फोटायनस्य'। ये स्फोटन के वंशज थे। स्फोटन भी एक वैय्याकरण थे, इनका उल्लेख अथर्व प्रातिशाख्य 1/103 व 2/38 में है।

अब हम आपको यह बताना चाहेंगे कि वाक्यपदीयकार भर्तृहरि, शतकत्रय के रचयिता भर्तृहरि तथा चीनी यात्री इत्सिंग द्वारा उल्लिखित भर्तृहरि तीनों ही तीन भिन्न-भिन्न कालों में होने वाले तीन भिन्न व्यक्ति हैं।

[72] चीनी यात्री इत्सिंग के विवरण के अनुसार उसके द्वारा-उल्लिखित भर्तृहरि बौद्धमतावलम्बी राजा थे। वे सात बार बौद्ध भिक्षु हुए और प्रत्येक बार भिक्षुत्व त्याग कर सात बार गृहस्थ बने। इत्सिंग ने लिखा है कि 675 ई0 सन् में उसके भारत पहुँचने के 40 वर्ष पूर्व अर्थात् 635 ई0सन् में इस राजा भर्तृहरि की मृत्यु हो चुकी थी। यह भर्तृहरि, शतक-त्रय के रचयिता भर्तृहरि से सर्वथा भिन्न थे क्योंकि शतकत्रय रचयिता शैव थे जैसा कि वैराग्य शतक के एक श्लोक से स्पष्ट है -

[73] वयं पुण्यारण्ये परिणतशरच्चन्द्रकिरणां।
त्रियामां नेष्यामो हरचरणचित्तैक शरणाः ॥

वाक्यपदीयकार, शतक-त्रय प्रणेता भर्तृहरि से भी भिन्न थे। जनश्रुति के अनुसार शतक-त्रय प्रणेता के गुरु का नाम गोरक्षनाथ था जब कि [74] वाक्यपदीयकार भर्तृहरि के गुरु का नाम वसुरात था। ये कट्टर वैदिक थे। इन्होंने अपने ग्रन्थ के आरम्भ में पतञ्जलि की वन्दना की है। [75] 'शब्दों के अर्थ का ज्ञान प्राप्त होने पर शब्द ब्रह्म की प्राप्ति होती है' इस सिद्धान्त के प्रवर्तक वाक्यपदीयकार भर्तृहरि नहीं बल्कि व्याडि नामक प्राचीन वैय्याकरण थे। व्याडि ने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन अपने 'संग्रह' नामक ग्रन्थ में किया था। महाराज समुद्रगुप्त (ई0सन् की चतुर्थ सदी) ने लिखा है-

[76] 'रसाचार्यः कविर्व्याडिशब्दब्रह्मैकवाङ्मुनिः।
दाक्षीपुत्रवचो व्याख्यापटुर्मीमांसाग्रणिः ॥

[77] पतञ्जलि के व्याकरण महाभाष्य के अनुसार व्याडि का 'संग्रह' व्याकरण का एक श्रेष्ठ दार्शनिक ग्रन्थ था जिसकी रचना पद्धति पाणिनीय अष्टाध्यायी के समान सूत्रात्मक थी (महा./4/2/60)। इस ग्रन्थ में चौदह सहस्र शब्दरूपों की जानकारी दी गयी थी (महा./1/1/1)

[78] चान्द्र व्याकरण में प्राप्त परम्परा के अनुसार 'संग्रह' ग्रन्थ में कुल 5 अध्याय एवं एक लक्ष श्लोक थे। [79] व्याडि का यह अप्राप्य ग्रन्थ यत्र-तत्र उद्धृत है। इस ग्रन्थ के 21 सूत्र निश्चितरूप में ज्ञात हुए हैं। अनन्तरकालीन वैय्याकरणों द्वारा इस ग्रन्थ की भूरि-भूरि प्रशंसा की गई है। [80] पाणिनि के अष्टाध्यायी 6।2।86। में व्याडि का उल्लेख

है। यास्क, शौनक, पाणिनि, पिंगल, व्याडि एवं कौत्स-ये व्याकरणाचार्य प्रायः समकालीन थे। पं० युधिष्ठिर शर्मा मीमांसक के अनुसार व्याडि का काल ई० पू० 2800 है।

[81]वाक्यपदीय में भतृहरि ने स्वयं लिखा है कि लोगों की रुचि संक्षेप में पढ़ने की तथा अल्पविद्यापरिग्रही हो गई । ऐसे अल्पविद्यापरिग्रही पाठकों को पाकर 'संग्रह' ग्रन्थ का पठन बन्द हो गया। तब इसके बीज को ग्रहण कर पतञ्जलि ने महाभाष्य की रचना की। किन्तु अत्यन्त गम्भीर होने के कारण धीरे-धीरे महाभाष्य का भी पठन पाठन बन्द हो गया। महाभाष्य, संग्रह का प्रतिकंचुक स्वरूप था। बाद में कश्मीर नरेश अभिमन्यु के शासनकाल में चन्द्राचार्य ने महाभाष्य का उद्धार कर इसका पुनः प्रचार किया। लुप्त 'संग्रह' ग्रन्थ के प्रतिपादित सिद्धान्त एवं उपलब्ध सामग्रियों का संकलन कर भर्तृहरि ने वाक्यपदीय ग्रन्थ रचा।

भर्तृहरि ने वाक्यपदीय में चन्द्राचार्य व कश्मीर नरेश अभिमन्यु का उल्लेख किया है। [82]कल्हण की राजतरंगिणी के अनुसार गौतम बुद्ध की मृत्यु के 150 वर्ष पश्चात् राजा अभिमन्यु अभिषिक्त हुए थे अर्थात् ई० पू०337 के पश्चात् । इसी राजा के शासनकाल में चन्द्राचार्य ने महाभाष्य का उद्धार किया जिससे प्रेरित होकर 'संग्रह' ग्रन्थ के उद्धार हेतु भर्तृहरि ने वाक्यपदीय की रचना की। इस आधार पर इन भर्तृहरि का काल ई० पू० तीसरी शताब्दी निश्चित होता है। पं. युधिष्ठिर शर्मा मीमांसक के अनुसार इनका काल वि०सं०पू० 500 निश्चित किया गया है।

अतएव यह निश्चित है कि कुमारिल भट्ट, मण्डन मिश्र तथा वाक्यपदीयकार द्वारा उद्धृत उक्त वाक्य उनके अपने न होकर व्याडि के 'संग्रह' ग्रन्थ से लिए गए उद्धरणमात्र हैं जो कि इन तीनों से ही बहुत पूर्व हुए थे।

मात्र पंक्तिसाम्य के अनुसार एक ग्रन्थकार के सापेक्ष दूसरे ग्रन्थकार के काल निर्धारण करने की प्रविधि विशेषकर संस्कृत साहित्य के साहित्यकारों के परिप्रेक्ष्य में पूर्णतया अवैज्ञानिक और अविश्वसनीय है। श्रीमज्जगद्गुरुशाङ्करमठविमर्श के लेखक का मानना है कि - [83]'पुराकाल के विद्वान् अपने अपने गुरु या प्रकाण्ड विद्वानों अथवा भूतपूर्व आचार्यों के सिद्धान्तों, विचारों व वादों पर अपनी व्याख्या या टीका-टिप्पणी अथवा उसका संग्रहरूप लिखकर कहते थे कि यह सब उनका ही कथन है। वे अपने पूर्व के विद्वानों या आचार्यों के भावों अथवा विचारों को नकल कर अथवा उसके साथ अपने भी विचार मिलाकर या उन विचारों को बदल कर अपने ग्रन्थ में दे देते थे।'

उपर्युक्त मत की पुष्टि निम्न प्रमाणों से होती है-

1. भासकृत नाटक प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् में एक श्लोक है -

[84]नवं शरावं सलिलैः सुपूर्णं सुसंस्कृतं दर्भकृतोत्तरीयम्।
तत्तस्य मा भून्नरकं स गच्छेद् यो भर्तृपिण्डस्य कृते न युध्येत्॥

कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में किसी पूर्वाचार्य का दो श्लोक उद्धृत किया है -

[84]ज्ञानेन यज्ञैस्तपसा च विप्राः स्वर्गैशिणः पात्रचयैश्च यान्ति।
क्षणेन तामप्यतियान्ति शूराः प्राणान्सुयुद्धेषु परित्यजन्तः॥1॥
नवं शरावं सलिलैः सुपूर्णं सुसंस्कृतं दर्भकृतोत्तरीयम्।
तत्तस्य मा भून्नरकं स गच्छेद् यो भर्तृपिण्डस्य कृते न युध्येत्॥2॥

ऐसी स्थित में हम यह कह सकते हैं कि भास ने कौटिल्य के अर्थशास्त्र से यह श्लोक लिया है क्योंकि प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् में अर्थशास्त्र का भी उल्लेख है ।यथा -

[86]'अर्थशास्त्र गुणग्राही ज्येष्ठो गोपालकः सुतः'

उपर्युक्त वाक्य उज्जैन नरेश चण्डप्रद्योत ने अपने पुत्र के सम्बन्ध में कहा है। चण्ड प्रद्योत मगधनरेश बिम्बिसार के समकालीन थे तथा इनका राज्याभिषेक ई0 पू0 521 में हुआ था। अब समस्या उठ खड़ी होती है चाणक्य के काल की। तो क्या चाणक्य ई0पू0छठी सदी के पूर्व हुये थे? इसका समाधान भास की एक अन्य कृति प्रतिमानाटकम् से हो जाता है वहाँ पर उन्होंने स्पष्टतः बार्हस्पत्य अर्थशास्त्र का उल्लेख किया है न कि कौटिल्य के अर्थशास्त्र का यथा -

[87]भोः कश्यपगोत्रोऽस्मि, साङ्गवेदमधीये, मानवीयं धर्मशास्त्रं, माहेश्वरं योगशास्त्रं, बार्हस्पत्यम् अर्थ शास्त्रम्, प्राचेतसं श्राद्धकल्पञ्च।'

इससे यह प्रकाशित होता है कि प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् में उल्लिखित अर्थशास्त्र, [88]बार्हस्पत्य अर्थशास्त्र है जिसका उल्लेख कौटिल्य ने भी अपने अर्थशास्त्र में किया है। इस दशा में भास कौटिल्य के पूर्ववर्ती सिद्ध हो जाते हैं। तो क्या कौटिल्य ने भास की कृति प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् से उक्त श्लोक को उद्धृत किया है? इसका भी उत्तर है, नहीं। क्योंकि कौटिल्य ने किसी प्राचीन पूर्वाचार्य के दो श्लोकों को उद्धृत किया है। चाणक्य द्वारा उद्धृत पहला श्लोक प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् में नहीं है। इससे यही स्पष्ट होता है कि भास तथा कौटिल्य दोनों ने किसी पूर्वाचार्य के ग्रन्थ से उक्त श्लोक को उद्धृत किया है

जो कि सम्प्रति अविज्ञात है।

2. [89]श्रीमद् भागवत महापुराण में कहा गया है कि- विराट् पुरुष के मुख से ब्राह्मणों, भुजाओं से क्षत्रियों, जंघाओं से वैश्यों तथा चरणों से शूद्रों की उत्पत्ति हुई। इसी आशय के श्लोक [90]स्कन्दपुराण, [91]सुबालोपनिषद्, [92]महाभारत, [93]लघुहारीतस्मृति, [94]याज्ञवल्क्य स्मृति, तथा [95]मनुस्मृति में भी हैं। परन्तु श्लोकों के पाठभेद से यह स्पष्ट हो जाता है कि एक ग्रन्थकार ने दूसरे ग्रन्थ से उद्धरण नहीं दिया है बल्कि उन सभी के स्रोत [96]यजुर्वेद तथा [97]यजुर्वेद तथा [98]अथर्ववेद हैं जहाँ पर वर्णोत्पत्ति का मूल सिद्धान्त वर्णित है। मात्र शब्द साम्य अथवा अर्थसाम्य रखने वाल श्लोकों के दो या दो से अधिक ग्रन्थकारों के ग्रन्थों में पाये जाने से एक को दूसरे का पूर्ववर्ती या अनुवर्ती नहीं प्रमाणित किया जा सकता है इसके लिए तो अन्य ही आधार ढूँढ़ने पड़ेंगे।

[99]श्रीमद्वाल्मिकि रामायण तथा [100]श्रीविष्णुपुराण में क्षत्रियों की उत्पत्ति 'भुजाओं' से न मानकर 'हृदय' से मानी गयी है। सम्भवतः इन ग्रन्थकारों के समक्ष वेदों की एक ऐसी शाखा की संहितायें उपलब्ध थीं जिनमें क्षत्रियों की उत्पत्ति हृदय से बतायी गई थी।

3. आत्मा, अजर, अमर और अविनाशी है इसं सिद्धान्त का प्रतिपादन करने वाले दो श्लोक- 'य एनं वेत्ति हन्तारं...,' व 'न जायते म्रियते वा कदाचित् ....' [101]श्रीमद्भगद्गीता तथा [102]कठोपनिषद् दोनों में ही अल्पपाठ भेद के साथ पाये जाते हैं। पूर्वपक्षी की भाषा में यदि हम कहें तो हमें यह कहना पड़ेगा कि-यह कहना कि कठोपनिषद् से श्रीमद्भगवद्गीता के रचयिता ने उक्त श्लोकों को लिया एक सुप्रतिष्ठित ईश्वरकोटि के व्यक्ति चोरी का आरोप लगाना है। तब क्या ऐसी स्थिति में हम यह मान लें कि कठोपनिषद् जो कि श्रुति है श्रीमद्भगवद्गीता का परवर्ती ग्रन्थ है?

4. 'अणोरणीयान्महतो....' श्लोक अत्यल्प पाठ भेद के साथ [103]कठोपनिषद् तथा [104]श्वेताश्वतरोपनिषद् दोनों ही में पाया जाता है। ऐसी स्थिति में कौन सा उपनिषद् पूर्ववर्ती और कौन सा अनुवर्ती इसका निर्धारण पूर्वपक्षी कैसे करेंगे? क्या एक श्रुति ने दूसरे श्रुति से चोरी की है?

5. [105]मारकण्डेय पुराण 42/7-8में 'प्रणवो धनुः शरोह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्य मुच्यते' कहा गया है। लिङ्ग पुराण 2।92।49-50में 'प्रणवो धनुः शरोह्यात्मा ब्रह्म लक्षणमुच्यते' आया है । श्रीमद् भागवत महापुराण में 'धनुर्हि तस्य प्रणवं पठन्ति शरं तु जीवं परमेव लक्ष्यम्' अभिकथित है। ऐसी स्थिति में क्या यह कहना उचित होगा कि

क्रमशः एक पुराणकार ने दूसरे पुराण से उपर्युक्त पंक्ति को ग्रहण किया है? उत्तर होगा, नहीं क्योंकि मुण्डकोपनिषद् का श्लोक -

[106]प्रणवो धनुः शरोह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत् ॥

उपर्युक्त तीनों ही पुराणों का मूल स्रोत निश्चित होता है। अतएव पंक्ति साम्य के आधार पर उक्त तीन पुराणों के काल निर्धारण का प्रयास, मात्र विभ्रमकारी होगा।

6. 'त्यजेदेकं कुलस्यार्थे .....' श्लोक [107]पंचतंत्रम्, [108]चाणक्यनीति तथा [109]महाभारत में अत्यल्प पाठभेद के साथ पाया जाता है। तो पूर्वपक्षी के शब्दों में क्या हम यह कह दें कि चाणक्य जैसे सुप्रतिष्ठित विद्वान् तो चोरी कर नहीं सकते अतः निश्चित रूप से महाभारत चाणक्य के बाद लिखा गया ग्रन्थ है?

7. चक्रवत् सुख-दुःख के परिवर्तन से सम्बन्धित पंक्ति [110]मेघदूतम्, [111]स्वप्नवासवदत्तम्, [112] महाभारत तथा [113]अध्यात्मरामायण में प्राप्त है। तो क्या इस उपलब्धि के आधार पर पूर्वपक्षी के शब्दों में हम यह कह दें कि कालिदास जैसे सुप्रतिष्ठित कवि तो चोरी कर नहीं सकते अतएव स्वप्नवासवदत्तम् एवं महाभारत, मेघदूतम् के पश्चात् लिखे गये?

8. 'प्रारभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचैः.....' भर्तृहरि कृत [114]नीतिशतकम्, [115]विशाखदत्त कृत मुद्राराक्षसम् तथा [116]विष्णुशर्मा कृत पंचतंत्रम् में यथावत् प्राप्त होता है।

9. 'न विश्वसेदविश्वस्ते .....' श्लोक [117]पंचतंत्रम्, [118]चाणक्य नीतिदर्पण तथा [119]महाभारत में पाया जाता है।

10. 'पत्यौ जीवति या नारी उपोष्य व्रतमाचरेत् ......' यह श्लोक अल्पपाठ भेद के साथ [120]पराशर स्मृति, [121]अत्रि संहिता, [122]चाणक्य नीतिदर्पण एवं [123]बृहद् विष्णुस्मृति में उपलब्ध है।

11. 'अनृतं साहसं माया मूर्खत्वमतिलोभिता....' यह श्लोक कुछ पाठ भेद के साथ [124]पंचतंत्रम्, [125]चाणक्य नीतिदर्पण तथा [126]वाल्मीकिरामायण में प्राप्त है।

12: 'यो ध्रुवाणि परित्यज्य अध्रुवं परिषेवते....' यह श्लोक लगभग इसी रूप में [127]चाणक्य नीतिदर्पण, [128]पंचतंत्रम् और [129]गुरुड़पुराण में उपलब्ध है।

13. 'धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः....' यह श्लोक [130]मनुस्मृति तथा [131] महाभारत में प्राप्त हैं। अर्थतः यह श्लोक [132]शुक्रनीति में भी है।

14. 'न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति....' यह श्लोक ज्यों का त्यों

[133]अविमारकम्, [134]महाभारत में पाया जाता है।

15. 'यत्ने कृते यदि न सिध्यति कोऽत्र दोषः' यह पंक्ति भासकृत [135]अविमारकम्, [136]पंचतंत्रम् तथा कृष्णमिश्र कृत [137]प्रबोध चन्द्रोदय में पायी जाती है।

16. शुक्रनीति की एक पंक्ति- [138]'न कुर्य्यात सहसा कार्य्यं...', अल्प रूपान्तर के साथ भारवि कृत [139]किरातार्जुनीयम् में भी पायी जाती है। 'लालनाद् बहवो दोषास्ताडनाद् बहवो गुणाः' यह पंक्ति[140] पतञ्जलि तथा [141]चाणक्य के ग्रन्थों में यथावत् पायी जाती है। 'कालः पचति भूतानि' यह पंक्ति [142]महर्षि कृष्णद्वैपायन व्यास तथा [143]चाणक्य द्वारा समानरूप से अभिकथित है। 'भवन्ति मम्रास्तरवः....' यह श्लोक भर्तृहरि के [144]नीतिशतकम् तथा महाकवि कालिदास कृत [145]अभिज्ञानशाकुन्तलम् में यथारूप वर्णित है। 'दानं भोगो नाशस्तिस्रो....' तथा 'परिवर्तिनि संसारे मृतः ...' श्लोक [146]पंचतंत्रम् तथा [147]भर्तृहरि कृत नीतिशतकम् में पाये जाते हैं। 'मरणान्तानि वैराणि ' यह पंक्ति [148]वाल्मीकीयरामायण तथा [149]अध्यात्म रामायण दोनों ही ग्रन्थों में समान रूप से प्राप्त है। 'तपः परं कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमुच्यते...'यह श्लोक [150]मनुस्मृति, [151]पराशर स्मृति, [152]पद्म पुराण, [153]लिङ्गपुराण, [154]भविष्य पुराण आदि में प्राप्त है।

ऐसी स्थिति में एक बार पुनः यही कहना पड़ेगा कि पंक्तिसाम्य के आधार पर एक ग्रन्थकार के सापेक्ष दूसरे ग्रन्थकार का काल निर्धारण कम से कम संस्कृत साहित्य के सम्बन्ध में करना तो अँधेरे में तीर छोड़ने के समान होगा।

बिन्दु-१९

पतञ्जलि का काल

पूर्वपक्ष

योग दर्शन प्रणेता पतञ्जलि तथा महाभाष्य प्रणेता पतञ्जलि दोनों दो भिन्न-भिन्न कालों में होने वाले दो विभिन्न व्यक्ति हैं। योगदर्शन प्रणेता गौतम बुद्ध के पूर्ववर्ती तथा महाभाष्यकार अनुवर्ती प्रमाणित होते हैं क्योंकि महाभाष्य में पुष्यमित्र एवं मौर्यों का उल्लेख है।

उत्तरपक्ष

योग दर्शन प्रणेता पतञ्जलि ही महाभाष्य के भी रचनाकार हैं, वाक्यपदीयकार स्वयं इस बात के साक्षी हैं, वे लिखते हैं -

[155]योगेन चित्तस्य पदेन वाचां, मलं शरीरस्य च वैद्यकेन।
योऽपाकरोत् तं प्रवरं मुनीनां, पतञ्जलिं प्राञ्जलिरानतोऽस्मि॥

कुछ लोग महाभाष्य की पंक्तियों - [156]'मौर्य हिरण्यार्थिभिरर्चाः प्रकल्पिताः। भवेत्तासु न स्यात्। यास्त्वेताः सम्प्रति पूजार्थास्तासु भविष्यति।' के आधार पर महाभाष्यकार का काल मौर्य राजवंश का पतन काल मानते हैं क्योंकि उनका मानना है कि चन्द्रगुप्त मौर्य के पूर्व मौर्य जाति का अस्तित्व न था तथा उक्त पंक्ति से मौर्यों की दारिद्र्यपूर्ण स्थिति का पता चलता है। परन्तु उपर्युक्त तर्क उचित नहीं है क्योंकि मौर्यों का अस्तित्व तो गौतम बुद्ध के भी समय में था। [157]महापरिनिब्बा-सुत्त तथा [158] बुद्धचरितम् में लिखा है कि बुद्ध की अंत्येष्टि के पश्चात् पिप्पलीवन के मौर्य उनकी चिता के अंगारों को ले गये। [159]राहुल सांकृत्यायन के अनुसार बिहार प्रान्त के चम्पारण जनपद में नरकटियागंज रेलवे स्टेशन के पास रमपुरवा के नजदीक जो पिपरिया नामक स्थान है वही गौतम बुद्ध के समय पिप्पलीवन के नाम से प्रसिद्ध था। [160]चीनी यात्री फाहियान ने भी मौर्यों के द्वारा निर्मित अङ्गार स्तूप का उल्लेख किया है।

उपर्युक्त प्रमाणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि मौर्यों का अस्तित्व गौतम बुद्ध के समय में भी था। वे वृषल न होकर क्षत्रिय जाति के थे तथा पिप्पलीवन उनकी राजधानी थी। अतः यह भ्रान्त धारणा है कि चन्द्रगुप्त के पूर्व मौर्यों का अस्तित्व नहीं था तथा मौर्यों का उल्लेख करने वाले पतञ्जलि चन्द्रगुप्त मौर्य के पूर्व के नहीं हो सकते।

महाभाष्यकार की एक अन्य पंक्ति - [161]पुष्यमित्रो यजते, याजकाः यजन्ति। तत्र भवितव्यम् - पुष्यमित्रो याजयेत, याजकाः याजन्तीति याज्यादिषु चाविपर्यासो वक्तव्यः' के आधार पर कुछ विद्वान् पतञ्जलि को शुङ्गवंशी राजा पुष्यमित्र का समकालीन मानते हैं। परन्तु यह भी उचित नहीं है क्योंकि उक्त पंक्ति से यह नहीं विनिश्चित किया जा सकता है कि यहाँ राजा पुष्यमित्र शुङ्ग का उल्लेख है। पूर्व प्रश्न के उत्तर में सिद्ध किया जा चुका है कि मात्र अनिश्चयात्मक पंक्तियों के आधार पर किसी का काल निर्धारण करना सर्वथा अवैज्ञानिक प्रयास है। वैसे शुङ्गों का उल्लेख तो पाणिनि ने भी किया है यथा-

[162] विकर्णशुङ्गच्छगलाद्वत्सभरद्वाजात्रिषु

यही नहीं आश्वलायन श्रौतसूत्र में भी शुङ्ग आचार्य का उल्लेख है। तो क्या मात्र शुङ्ग शब्द के उल्लेख करने के कारण हम आश्वलायन तथा पाणिनि को पुष्यमित्र शुङ्ग का समकालीन अथवा पश्चात्वर्ती मान लें?

कल्हण कृत राजतंरगिणी से ज्ञात होता है कि महाभाष्य का एक बार [163]राज अभिमन्यु के समय में बुद्ध के निर्वाण के 150 वर्ष बाद तथा दूसरी बार [164]राजा जयापीड के समय में 751 से 782 ई0 के बीच उद्धार किया गया। [165]इसकी पुष्टि वाक्यपदीयकार भर्तृहरि भी करते हैं कि राजा अभिमन्यु के समय में महाभाष्य का पुनरुद्धार किया गया। स्वयं भर्तृहरि ने महाभाष्यदीपिका लिखकर इसके प्रचार-प्रसार को बढ़ाने का काम किया। [166]डी. सी. सरकार के मतानुसार महाभाष्य में कुषाण काल तक परिवर्तन-परिवर्द्धन होते रहे। ऐसी स्थिति में परिवर्तन-परिवर्द्धन के फलस्वरूप यदि महाभाष्य में कुछ ऐसी पंक्तियाँ आ भी गयी हों जो कि पश्चातवर्ती सिद्ध होती हैं तो उन पंक्तियों को प्रक्षिप्त ही मानना उचित होगा क्योंकि जिस महाभाष्य का प्रथम बार उद्धार ई0पू0 337 के लगभग किया गया था उसके प्रणेता पतञ्जलि ईसवी सन् पूर्व की द्वितीय सदी के कैसे हो सकते हैं?

बिन्दु-२०

पुराणों में मात्र प्रधान राजाओं का वर्णन

पूर्वपक्ष

पुराणों की अवहेलना भारतीयों के लिये एक भयङ्कर भूल है जिसके शिकार हमारे आर्य भाई हमेशा से रहे हैं। भले ही पुराणों में अर्थवाद के रूप में लाखों वर्षों की तपस्या आदि का वर्णन किया गया है या 'अहोरात्रं वै संवत्सरः' आदि के अनुसार कहीं वर्णन किया गया हो परन्तु जहाँ प्रसिद्ध इतिहास बताना है वहाँ पुराणकार ठीक-ठीक बताते हैं।

उत्तरपक्ष

निश्चित रूप से यह कहा जा सकता है कि श्रुति वाक्य [167]देवानां परोक्ष प्रियः' का अनुशरण करते हुये विद्या को गुह्य रखने के प्रयोजन से प्राचीन ग्रन्थों में वर्ष का प्रयोग दिन, पक्ष, मास, ऋतु, मुहूर्त आदि के लिये किया गया है जो कि [168]शतपथ ब्राह्मण से स्पष्ट है।

जहाँ तक पुराणों की वंश परम्परा का सम्बन्ध है पुराण तो ठीक-ठीक बताते हैं परन्तु हम ठीक-ठीक समझते नहीं। इस संदर्भ में महामहोपाध्याय गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी

का मत संगत एवं ग्राह्य है। उनके अनुसार-[169]पुराणों की वंश परम्परा में क्रमबद्ध सभी राजाओं के नाम नहीं दिये गये हैं अपितु संबन्धित वंश के केवल प्रधान राजाओं के ही नाम दिये गये हैं। अनेक वर्णन प्रसंगों में पुत्र का अर्थ वंशज है यथा राम के लिये रघुनंदन का प्रयोग । इसकी पुष्टि 'अपत्यं पितुरेव स्यात्ततः प्राचामपीति च' अर्थात् 'पिता का तो अपत्य होता ही है, उनके पुरुषों का भी वह अपत्य कहा जाता है'-इस वाक्य से भी होती है।

श्रीमद्भागतमहापुराण में परीक्षित के द्वारा राजाओं के वंश पूछने पर शुकदेव जी ने कहा -

श्रूयतां मानवो वंशः प्राचुर्येण परन्तप।
न शक्यते विस्तरतो वक्तुं वर्षशतैरपि।

(श्रीमद्भागवत् 9।1।7)

अर्थात् 'वैवस्त मनु का मैं प्रधान रूप से वंश सुनाता हूँ। इसका विस्तार तो सैकड़ों वर्षों में भी नहीं किया जा सकता।'

इसी प्रकार 'लिङ्गपुराण' तथा 'वायुपुराण' (उत्त., अ. 26 श्लोक 212) में भी राजाओं के वंश कीर्त्तन के अन्त में लिखा गया है-

एते इक्ष्वाकुदायादा राजानः प्रायशः स्मृताः।
वंशे प्रधाना एतस्मिन् प्राधान्येन प्रकीर्त्तिताः ॥

अर्थात् - 'इक्ष्वाकु वंश के प्रायः प्रधान-प्रधान राजाओं के ही नाम दिये गये हैं।' उदाहरणार्थ- इक्ष्वाकु पुत्र विकुक्षि के वंश में प्रायः 55 पुरुषों के अनन्तर राम का उल्लेख पुराणों में मिलता है जबकि इक्ष्वाकु के ही एक अन्य पुत्र निमि के वंश में प्रायः 21 पीढ़ी के अनन्तर ही सीता के पिता सीरध्वज का नाम आता है। इससे स्पष्ट है कि पुराणों में दोनों वंशों के प्रधान-प्रधान राजाओं के ही नाम गिनाये गये हैं। अतः, जिस वंश में प्रधान और प्रतापी राजा अधिक हुए उसमें अधिक तथा जिसमें कम हुए उसमें कम नाम आ गये। ऐसा भी देखा जाता है कि किसी एक पुराण में एक वंश के राजाओं के जो नाम मिलते हैं वे दूसरे पुराणों में नहीं मिलते । इसका कारण है कि जिस पुराणकार की दृष्टि में जो राजा प्रतापवान् समझा गया उसी का उल्लेख उस पुराणकार ने किया । पुराणों में वंशों के वक्ता पृथक्-पृथक् ऋषि आदि हैं जो स्वतः पुराणों से स्पष्ट है। अतः पुराणों में काल-गणना का जो विस्तार वैज्ञानिक रीति से किया गया है, उसे न मानकर अपनी प्रज्ञा से उसका संकोच करना उचित नहीं है।

बिन्दु-२१

पूर्वपक्षी के पौराणिक आधार की विसंगतियाँ

पूर्वपक्ष

हमें तरस तो तब आती है जब लोग स्वयं मूल ग्रन्थों का अध्ययन न कर दूसरों के उद्धृत वचनों पर निर्भर रहते हुए उन्हीं को गाली देने लगते हैं। श्रीमद्भागवत महापुराण के अनुसार बृहद्रथ वंश के (२१) राजाओं ने १000 वर्ष, प्रद्योत वंश के ५ राजाओं ने १३८ वर्ष, शिशुनाग वंश के १0 राजाओं ने ३६0 वर्ष, नंद वंश के ९ राजाओं ने १00 वर्ष, मौर्य वंश के १0 राजाओं ने १३७वर्ष,शुंग वंश के १0 राजाओं ने १00वर्ष, कण्ववंश के ४ राजाओं ने ३४५ वर्ष तथा आंध्र जातीय ३0 राजाओं ने ४५६ वर्ष कलि संवत् २६६६ (तुल्य ईसवी सन् पूर्व ४३६) तक राज्य किया। उसके बाद ७ आभीर १0 गर्दभी, १६ कंक, ८ यवन और १४ तुरुष्क कुल ५५ राजाओं ने १0९९ वर्ष, २0 वर्ष के औसत से राज्य किया। कल्हण के अनुसार हुष्क,जुष्क के बाद कनिष्क आता है । अर्थात् कनिष्क ४४वाँ राजा है । फलतः (आन्ध्रवंश की समाप्ति के) ८६0 वर्ष पश्चात् कनिष्क कलिसंवत् ३५२६ (तुल्य ई. सन् ४२६) में राजा हुआ । परन्तु सबने २0-२0 वर्ष ही राज्य किया हो ऐसा नहीं हो सकता अतः सौ दो सौ वर्ष का अन्तर भी आ सकता है । सर्वथापि कनिष्क का काल ईसा की दूसरी या तीसरी सदी आता है । जो बहुत से गवेषकों को इष्ट है । फिर जो कुछ कमी बेसी करना है वह इसी १0९९ वर्ष में ही करना पडेगा । माना जाय कि आभीर, गर्दभी, कंक तथा यवन राजवंशों के शासक परस्पर भाई थे (अर्थात् मात्र ४ पीढ़ी के शासक थे) तथा १४ तुरुष्क १४ पीढ़ी के राजा थे। तब इन (१८पीढ़ी के) राजाओं का औसत (१0९९÷१८=) ६१ वर्ष प्राप्त होता है। इस आधार पर कनिष्क (आंध्रवंश की समाप्ति के) ३६६ वर्ष पश्चात् (क्योंकि आभीर,गर्दभी,कंक एवं यवन

वंशों की चार पीढी के राजाओं के बाद कनिष्क, तुरूस्क वंश में हुष्क,जुष्क के बाद तीसरे क्रम पर आता है अतः आन्ध्रवंश की समाप्ति के बाद वह ६ पीढ़ी के राजाओं के बाद आता है) अर्थात् कलि संवत् ३०३२ (तुल्य ईसवी सन् पूर्व ७०) में राजा हुआ। ऐसी स्थिति में कल्हण का यह कहना कि कनिष्क से डेढ़ सौ वर्ष पूर्व बुद्ध का निर्वाण हुआ यह हिसाब-किताब या किंवदंती की गड़बड़ी ही लगती है। उन्हें कम से कम तीन साढ़े तीन सौ वर्ष कहना चाहिए था!

उत्तरपक्ष

सर्वप्रथम तो पूर्वपक्षी को अपने उपर तरस आनी चाहिये क्योंकि उन्होंने मूल ग्रन्थों का स्वयं अध्ययन न कर दूसरों के उद्धरणों के आधार पर ही अपने लेख को मूर्त रूप दिया है, यथा-

1. कल्हण की राजतंरगिणी के विवरणों के अनुसार कश्मीर का राजा गोनन्द (द्वितीय) परीक्षित का समवयस्क ठहरता है। गोनन्द (द्वितीय) से गणना करने पर कनिष्क 50वें क्रम पर आता है। यदि पूर्वपक्षी ने मूल ग्रन्थ का अवलोकन किया होता तो वे कनिष्क को क्यों 44वाँ राजा लिखते?

2. पूर्वपक्षी के विवरणानुसार महाभारत युद्ध के पश्चात् से मगध पर ई.पू. 436 तक कुल 99 राजाओं ने राज्य किया। उसके बाद 55 राजाओं ने राज्य किया जिसमें उनके अनुसार कनिष्क 44वाँ अथवा एक अन्य गणना के अनुसार 7वाँ राजा निश्चित किया गया है। इस आधार पर यह कनिष्क महाभारत युद्ध के पश्चात् से मगध का कथित 143वाँ अथवा 106वाँ राजा सिद्ध होता है। ऐसी स्थिति में महाभारत युद्ध के पश्चात् से कश्मीर पर राज्य करने वाले 50वें राजा कनिष्क से तथाकथित मगध पर शासन करने वाले उक्त 143वें अथवा 106वें राजा कनिष्क का सम्बन्ध कैसे स्थापित किया जा सकता है?

3. राजतरंगिणी के अनुसार कनिष्क का राज्यांत गौतम बुद्ध के निर्वाण के 150 वर्ष के पश्चात् अर्थात् ई.पू. 337 में हुआ था। श्रीमद्भागवत महापुराण के अनुसार महाभारत युद्ध के पश्चातवर्ती मगध नरेशों की सूची में नंद वंश का अंतिम राजा 45 वें क्रम पर आता है। नंद वंश के अन्तिम राजा का नाम धनानंद था जो कि भारत पर

सिकन्दर द्वारा किये गयें आक्रमण के समय ई.पू. 326 में मगध पर राज्य कर रहा था। अतएव कश्मीर राजवंश के 50वें क्रम पर आने वाले राजा कनिष्क का मगध के 45वें राजा धनानन्द का समकालीन होना युक्ति संगत है। अतः कल्हण का यह कथन पूर्णतया सत्य है कि गौतम बुद्ध के निर्वाण के 150 वर्ष के पश्चात् अर्थात् ई.पू. 337 में कश्मीर नरेश कनिष्क का राज्यांत हुआ।

4. हमें बड़े संकोच के साथ कहना पड़ रहा है कि पूर्वपक्षी ने श्रीमद्भागवत महापुराण का भी मूल ग्रन्थ नहीं पढ़ा था अन्यथा [170]शुङ्गवंशी राजाओं का राजत्व काल वे 112 वर्ष के स्थान पर 100 वर्ष क्यों लिखते? इतना ही नहीं उन्होंने श्रीमद्भागवत महापुराण के अशुद्धपाठके आधार पर 4 कण्ववंशी राजाओं का राजत्व काल 345 वर्ष लिख दिया जो कि प्रथम दृष्ट्या ही असंभव प्रतीत होता है। पूर्वपक्षी ने यदि मूल [171]विष्णु पुराण का अध्ययन किया होता तो वे ऐसी भूल कदापि न करते और उन 4 राजाओं का राजत्व काल मात्र 45 वर्ष लिखते न किं 345 वर्ष।

5. पूर्वपक्षी ने सम्भवतः इतिहास के प्रामाणिक ग्रन्थों तथा मुद्राशास्त्र का भी अध्ययन नहीं किया था। उनके द्वारा प्रमाणभूत मान्य [172] ह्वेनसाङ्ग के अनुसार पुरुषपुर (वर्तमान में पाकिस्तान देश के पेशावर) का राजा कनिष्क गौतम बुद्ध के निर्वाण के 400 वर्ष बाद राजा हुआ था। इस आधार पर इस कनिष्क का राज्याभिषेक ई.पू. 87 सिद्ध होता है। इसका मगध पर कभी भी शासन नहीं था अतएव इसे मगध राजवंश में कदापि स्थान नहीं दिया जा सकता। इसकी पहचान कुषाण कनिष्क से की जा सकती है। कुछ लोग भ्रमवश इसे 78 ईसवी से परिगणित शालिवाहन शक सम्वत् का प्रवर्तक मान बैठे हैं परन्तु इस नरेश एवं इसके परवर्ती वंशजों के अभिलेखों से स्पष्ट हो जाता है कि इसके काल से परिगणित संवत् का नाम कनिष्क संवत् था जो कि 100 संख्या की पूर्ति के बाद पुनः 1 संख्या से लिखा जाता था जबकि शक सम्वत् शालिवाहन शक संवत् के नाम से जाना जाता है और यह अपने पूर्णवर्षों में लिखा जाता है यथा वर्तमान् में शक संवत् 1922 । [173]कुषाण कनिष्क (प्रथम) के पौत्र का नाम भी कनिष्क था। यह कनिष्क (द्वितीय) कनिष्क-संवत् के (1) 14वें वर्ष में राज्य कर रहा था ऐसा मथुरा में प्राप्त बुद्ध मूर्तिलेख से ज्ञात होता है। [174] कुषाण कनिष्क (प्रथम) से उसकी छठवीं पीढ़ी में आने वाले राजा का नाम भी कनिष्क था। यह कनिष्क (तृतीय) कनिष्क संवत् के (1) 41वें वर्ष में राज्य कर रहा था ऐसा आरा नामक नाले (पाकिस्तान देश में अटक से 10 मील

दूर) के पास से प्राप्त खरोष्ठी लिपि में अंकित एक अभिलेख से ज्ञात होता है। ऐसी स्थिति में जिस किसी भी कनिष्क को मनमाने ढंग से कश्मीर अथवा मगध का राजा मान लेना अल्पज्ञता का ही परिचायक है वास्तव में कुषाणवंशी तीनों कनिष्क कश्मीर नरेश कनिष्क से सर्वथा भिन्न हैं।

6. पूर्वपक्षी ने जिन उद्धरणों का उल्लेख किया है वे भी उनके द्वारा मूलग्रन्थों के अध्ययन का परिणाम नहीं हैं बल्कि वे मात्र अन्य पुरोगामी अध्येताओं के द्वारा उद्धृत उद्धरण मात्र हैं। पूर्वपक्षी ने उन अध्येताओं का नामोल्लेख न कर लेखकीय ईमानदारी का भी परिचय नहीं दिया है। उनके द्वारा उद्धृत पंक्तियों का स्रोत इण्डियन एण्टीक्वेरी खण्ड 11 पृष्ठ 263 (जून 1882ई0 अङ्क), शङ्करदिग्विजय ग्रन्थ के आंग्ल भाषान्तर की स्वामी तपस्यानन्द की भूमिका पृष्ठ 22-23, इण्डियन एण्टीक्वेरी खण्ड 16 पृष्ठ 161 (वर्ष 1887 ई0) एवं ज. वि. राज गोपाल शर्मा द्वारा सम्पादित 'श्रीमज्जगद्गुरु शाङ्करमठविमर्श' नामक पुस्तक में पृ0 11 व पृ0 16 से पृ0 24 में देखा जा सकता है। उपर्युक्त सभी ग्रन्थ पूर्वपक्षी के सम्बन्धित लेख से बहुत पूर्व के हैं।

7. पूर्वपक्षी ने न तो चीनी यात्री फाहियान का मूल यात्रा विवरण पढ़ा है और न ही उन्होंने प्राचीन बौद्ध साहित्य का अध्ययन किया है अन्यथा वह क्योंकर लिख देते कि बौद्धमत का प्रादुर्भाव गौतम बुद्ध से हुआ? उक्त ग्रन्थों में गौतम बुद्ध के पूर्व के अनेक बुद्धों का वर्णन है जिनकी पुष्टि अभिलेखीय साक्ष्यों से भी होती है।

8. पूर्वपक्षी की प्रथम गणना के अनुसार कनिष्क का राज्यारम्भ ई0 सन् 425 में हुआ था। यह निर्विवाद सत्य है कि गौतम बुद्ध मगध नरेश बिम्बिसार एवं उनके पुत्र अजातशत्रु के काल में वर्तमान थे। बौद्ध ग्रन्थों के अनुसार अजातशत्रु के शासन के 8वें वर्ष में गौतम बुद्ध का निर्वाण हुआ जो कि पूर्वपक्षी की इस गणना के अनुसार ई0पू0 1705 प्राप्त होता है क्योंकि उनकी प्रथम गणना के अनुसार कनिष्क से 2138 वर्ष पूर्व अजातशत्रु का राज्यारोहण सिद्ध होता है। पूर्वपक्षी की दूसरी गणना के अनुसार कनिष्क का राज्यारम्भ ई. पू. 70 ठहरता है। इस गणना के अनुसार गौतम बुद्ध का निर्वाण ई0पू0 1926 प्राप्त होता है क्योंकि उनकी इस गणना के अनुसार कनिष्क से 1934 वर्ष पूर्व अजातशत्रु का राज्यारोहण सिद्ध होता है।

9. चीनी यात्री ह्वेनसाङ्ग, जिसके विवरण को पूर्वपक्षी पत्थर की लकीर मानते हैं लिखता है कि गौतम बुद्ध के निर्वाण के 400 वर्ष पश्चात् कनिष्क का राज्यारोहण हुआ

जो कि पूर्वपक्षी की उपर्युक्त दो गणनाओं के आधार पर क्रमशः ई०पू० 1305 व 1526 ई०पू० सिद्ध होता है। पूर्व में पूर्वपक्षी गौतम बुद्ध का निर्वाण काल 481 ई०पू० मान आये हैं जबकि उनकी उपर्युक्त दो गणनाओं के अनुसार गौतम बुद्ध का निर्वाण काल इस तिथि से क्रमशः 1224 व 1485 वर्ष पूर्व सिद्ध होता है। ऐसी स्थिति में पूर्वपक्षी को अपने धर्मकीर्ति, अश्वघोष, नागार्जुन, कुमारलात, दिङ्नाग आदि की तिथियों को क्रमशः 1224 व 1485 वर्ष पीछे खिसकाना पड़ेगा। अब इस समस्या का समाधान पूर्वपक्षी जी ही दें। क्या हम इन सभी का काल ई०पू० छठवीं सदी पहले का मान लें?

निष्कर्ष

आदि शङ्कराचार्य का काल
ई.पू.५०७ से ई.पू.४७५

उपर्युक्त प्रमाणों के, साक्ष्यों के आलोक में पूर्वपक्षी का यह मत पूर्णतया खण्डित हो जाता है कि आदिशङ्कराचार्य का जन्म ई०सन् 788 तथा कैलाश गमन ई०सन् 820 में हुआ था क्योंकि आदिशङ्कराचार्य द्वारा उनके काल में प्रचलित जिस कार्षापण मुद्रा का उल्लेख किया गया है उसका प्रचलन ई०सन् के प्रारम्भ के पूर्व ही समाप्त हो चुका था। आचार्य शङ्कर द्वारा उल्लिखित उनके काल का समृद्ध नगर स्रुघ्न ई० सन् की तीसरी शताब्दी में विनष्ट हो चुका था। आचार्य द्वारा उल्लिखित उनके समकालीन नरेश सुधन्वा का 36वाँ अपत्य वासुदेव ई०सन् 551 में राज्य कर रहा था, ऐसी स्थिति में राजा सुधन्वा तथा आदिशङ्कराचार्य ई०सन् की आठवीं व नवीं शताब्दी के कैसे हो सकते है। अभिलेखीय, पुरातात्त्विक, चीनी यात्री फाहियान व ह्वेनसाङ्ग के विवरणों, साहित्यिक, ऐतिहासिक, जनश्रुति एवं पारम्परिक मान्यताओं के प्रमाण से यह सिद्ध हो जाता है कि आदिशङ्कराचार्य का आविर्भाव युधिष्ठिर शक सम्वत् 2631 तथा कैलाश गमन युधिष्ठिर शक सम्वत् 2663 में हुआ था। ईसवी सन् में उनका आविर्भाव काल ईसवी पूर्व 507 व कैलाश गमन ईसवी पूर्व 475 प्राप्त होता है।

स्रोत संदर्भ

1. प्राचीन भारत - डॉ. रमेशचन्द्र मजुमदार। पृष्ठ 82
   प्राचीन भारत का इतिहास - डॉ0 विद्याधर महाजन। पृष्ठ 138
2. महावंश - 5/21/22
3. विमर्शः - जगद्गुरु शङ्कराचार्य राजराजेश्वर शङ्कराश्रम। पृष्ठ 26
4. नेपाल का इतिहास - आङ्ल अनुवाद । पृष्ठ 79
   अनुवादक : मुंशी शिवकुमार सिंह व पंडित गुणानन्द,
   सम्पादक - डेनियल राइट, प्रथम संस्करण 1877 ईसवी
5. बुद्ध चर्या - राहुल सांकृत्यायन। पृष्ठ 132-33
   पराजिका - 1/2 (विनय अट्ठकथा-समंतपासादिका)-बुद्धघोष
6. बौद्ध धर्म-दर्शन - आचार्य नरेन्द्रदेव। पृष्ठ 167
7. वहीं । पृष्ठ 168
8. चीनी यात्री फाहियान का यात्रा विवरण - भाषान्तरकर्त्ता श्री जगन्मोहन वर्मा। पृष्ठ 73
9. वहीं। पाद टिप्पणी
10. वहीं। पृष्ठ 90
11. वहीं। पृष्ठ 66-67
12. वहीं। पृष्ठ 69
13. वहीं। पृष्ठ 72
14. वहीं। पृष्ठ 82
15. वहीं। पृष्ठ 92
16. प्राचीन भारत के प्रमुख अभिलेख-डॉ. परमेश्वरी लाल गुप्त।खण्ड2। पृ. 132-133
17. वहीं। खण्ड 1। पृष्ठ 75-76
18. चीनी यात्री फाहियान का यात्रा विवरण । पृष्ठ 94
19. वहीं। पृष्ठ 56
20. वहीं। पृष्ठ 56। पादटिप्पणी
21. थूप वंश - आङ्ल भाषान्तर कर्त्ता विमल चरन ला। पृष्ठ 16

22. बौद्ध धर्म-दर्शन - आचार्य नरेन्द्र देव। पृष्ठ 181-82
23. महावंश । 1/5-10
24. आदि बुद्ध - डॉ. कनाई लाल हाजरा। पृष्ठ 172 व 179
25. विमर्शः । पृष्ठ 25 व 27
26. आदित्य वाहिनी पत्रिका । वर्ष 4। अङ्क 1। आवरण पृष्ठ
संपादक-अ.श्री.वि.ज.शङ्कराचार्य पुरी पीठाधीश्वर स्वामी निश्चलानन्द सरस्वती महाराज
27. अ. श्री. वि. ज. शङ्कराचार्य ज्योतिष्पीठाधीश्वर एवं शारदापीठाधीश्वर
स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती जी महाराज
28. उत्तराम्नाय ज्योतिष्पीठ - हिम्मतलाल उमियाशङ्कर दवे। गुजराती
संस्करण वर्ष ई0 सन् 1988। पृष्ठ 29-41
श्रीगुरुवंशपुराण (द्वितीय खण्ड) - श्रीमद् दण्डी स्वामी शिवबोधाश्रम।
पृष्ठ 512-13।
29. वहीं ।
30. शङ्कर दिग्विजय-माधवाचार्य - आङ्ल अनुवाद। विषय प्रवेश। पृष्ठ 18
पादटिप्पणी, पञ्चम आवृत्ति
31. कथा सरित्सागर - 2।3।31-83, 16।2।26-60, 18।3-5
32. सत्यार्थ प्रकाश। एकादश समुल्लास। अद्वैत समीक्षा
33. श्रीमज्जगद्गुरुशाङ्करमठविमर्श - सं. राजगोपाल शर्मा। पृष्ठ 185-86
34. शङ्कर दिग्विजय - माधवाचार्य। 15।1
35. राजा सुधन्वा और आदिशङ्कराचार्य - परमेश्वरनाथ मिश्र
36. मठाम्नाय सेतु । 31 व 34
श्रीमज्जगद्गुरुशाङ्करमठविमर्श - सं. राजगोपाल शर्मा। पृष्ठ 649
37. गुरुवंश काव्य - काशी लक्ष्मण शास्त्री। 8/38-42
38. वहीं । 17।28-64
39. भारत में अंग्रेजी राज्य - सुन्दरलाल। प्रथम खण्ड। पृ. 345-46
40. भगवान् आद्यशङ्कराचार्य और उनका समय सिद्धान्त पत्रिका।
वर्ष 14। अक्टूबर अङ्क। पृष्ठ 90 पर प्रकाशित
41. आदिशङ्कराचार्य और शृङ्गगिरिमठ - परमेश्वरनाथ मिश्र

42. प्राचीन भारत का इतिहास - डॉ. विद्याधर महाजन
43. भारतीय जहाज रानी - ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य : बलदेव सहाय
44. महावंश
45. प्राचीन भारत का इंतिहास - डॉ. विद्याधर महाजन
46. शङ्कर विजय - चित्सुखाचार्य । 32।12-16
47. श्री शङ्कराचार्य चरित्रम् - वेंकटाचल शर्मा। पृष्ठ 56
48. शङ्कर दिग्विजय-माधवाचार्य - 2।54 व आचार्य बलदेव उपाध्याय की टिप्पणी
49. श्री शङ्कराचार्य चरित्रम् - वेंकटाचल शर्मा। पृष्ठ 57
50. वहीं। पृष्ठ 54
51. श्रीमज्जगद्गुरुशाङ्करमठविमर्श - सं. राजगोपाल शर्मा। पृष्ठ 21
52. इण्डियन एण्टीक्वेरी। खण्ड 7। पृष्ठ 282
53. श्री शङ्कराचार्य चरित्रम् - वेंकटाचल शर्मा। पृष्ठ 54
54. वहीं। पृष्ठ 50-51
55. महानुशासनम् । 1, 2, 9,10, 13 व 26
56. विमर्शः । 25-26
57. गोवर्द्धनमठ-पुरी की आचार्यवली
58. विमर्शः । पृष्ठ 26
59. गोवर्द्धनमठ-पुरी की आचार्यवली
60. विमर्शः। पृष्ठ 26
61. नेपाल का इंतिहास - अनु. मुंशी शिवशंकर सिंह व पंडित गुणानन्द। पृष्ठ 79 से 82 व पृष्ठ 102-3
इण्डियन एण्टीक्वेरी । खण्ड 13। पृष्ठ 412-13
62. श्रीमज्जगद्गुरुशाङ्करमठविमर्श - सं. राजगोपाल शर्मा। पृष्ठ 362
63. स्तोत्र रत्नावली - प्रकाशक गीताप्रेस। पृष्ठ 50-54
64. माण्डूक्योपनिषद् - शाङ्करभाष्य । 2
65. आदिशङ्कराचार्यकालीन मुद्रा - कार्षापण - परमेश्वर नाथ मिश्र
66. ब्रह्मसूत्र शाङ्करभाष्य - 2।1।18
67. वहीं : 4।2।5

68. आदिशङ्कराचार्यकालीन प्रमुख नगर - परमेश्वर नाथ मिश्र
69. द इकोनोग्राफी ऑफ तिब्बतन लामाइज्म - ए. के. गार्डन। पृष्ठ 56
    द आदि बुद्ध - डॉ. कनाईलाल हाजरा । पृष्ठ 192
70. श्रीमद्भागवत महापुराण - 12।1।12-13
71. संस्कृत साहित्य का इतिहास - डॉ. वाचस्पति गैरोला। पृष्ठ 538-39
72. विदेशी यात्रियों की नजर में भारत - डॉ. परमानन्द पांचाल। पृष्ठ 22
73. वैराग्य शतक - भर्तृहरि । श्लो. 50
74. संस्कृत साहित्य का इतिहास - डॉ. वाचस्पति गैरोला । पृष्ठ 555-56
    संस्कृत वाङ्मय कोश। प्रथम खण्ड। पृ. 360व 362
75. प्राचीन चरत्रिकोश - म. म. सिद्धेश्वर शास्त्री चित्राव । पृष्ठ 915-16
76. कृष्ण चरित - महाराज समुद्रगुप्त। 16
77. प्राचीन चरित्र कोश - म. म. सिद्धेश्वर शास्त्री चित्राव । पृष्ठ 552-53
78. वहीं
79. संस्कृत वाङ्मय कोश - द्वितीय खण्ड। पृष्ठ 398
80. प्राचीन चरित्र कोश - चित्राव। पृष्ठ 915-16
81. पतञ्जलि कालीन भारत - डॉ. प्रभुदयाल अग्निहोत्री । पृष्ठ 66-67
82. राजतरंगिणी - कल्हण । 1।172-76
83. श्रीमज्जगद्गुरु शाङ्करमठविमर्श - पृष्ठ 348
84. प्रतिज्ञा यौगन्धरायणम् - भास 4।2.
85. अर्थशास्त्रम् 7 कौटिल्य - अनु. डॉ. वाचस्पति गैरोला। अ.10। प्र.150-52। अ. 3
86. प्रतिज्ञा यौगन्धरायणम् - भास 2/13
87. प्रतिमानाटकम् - भास
88. अर्थशास्त्रम् - कौटिल्यः अनु. डॉ. वाचस्पति गैरोला। प्र.1।अ.1।3
89. श्रीमद्भागवत महापुराण : 11।17।13
90. संक्षिप्त स्कंद पुराण - गीता प्रेस प्रकाशन। पृष्ठ 494
91. सुबालोपनिषद् - 1:16
92. महाभारत - शान्ति पर्व राजधर्मानुशासन पर्व। अ. 44। श्लो. 68

93. लघु हारितस्मृति - 12-13
94. याज्ञवल्क्य स्मृतिः - 3।126
95. मनुस्मृति - 1।31
96. ऋग्वेद - 10।90।12
97. यजुर्वेद - 31।11
98. अथर्ववेद - 19।6।6
99. श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण - अरण्य काण्ड। सर्ग 14। श्लो. 30
100. श्री विष्णुपुराण - प्रथम अंश। अ. 6।श्लो. 6।
101. श्रीमद्भगवद्गीता - 2।19-20
102. कठोपनिषद् - 1।2।18-19
103. कठोपनिषद् - 1।2।20
104. श्वेताश्वतरोपनिषद् - अ. 3। मन्त्र 20
105. पुराणगत वेदविषयक सामग्री का अध्ययन - डॉ. रमाशङ्कर भट्टाचार्य पृष्ठ 324-25
106. मुण्डकोपनिषद् - 2। 2। 4
107. पञ्चतन्त्रम् - मित्रभेद । 386
108. चाणक्य नीति दर्पणः - सं. जगदीश्वरानन्द सरस्वती 3।10
109. महाभारत - सभापर्व । 62।11
110. मेघदूतम् - उत्तरमेघः । 52
111. स्वप्नवासवदत्तम् - 1।4
112. महाभारत - शान्तिपर्व । 174।19
113. अध्यात्म रामायण - अयोध्याकाण्ड । सर्ग 6। श्लो. 13
114. भर्तृहरिकृत नीतिशतकम् । 73
115. मुद्राराक्षसम् । 2।17
116. पञ्चतन्त्रम् - काकूलीयम् । 238
117. पञ्चतन्त्रम् - लब्धप्रवाशम् । 14
118. चाणक्य नीतिदर्पणः । 2।6
119. महाभारत - आदिपर्व । 139।62
120. पराशर स्मृतिः । 4।17

121. अत्रि संहिता । 136
122. चाणक्य नीतिदर्पणः । 17।9
123. बृहद्विष्णु स्मृति । 25।16
124. पञ्चतन्त्रम् - मित्रभेदः। 207
125. चाणक्य नीति दर्पणः । 2।1
126. श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण - अरण्यकाण्ड। सर्ग 45। श्लो. 29 की प्रथम व 30 की द्वितीय पंक्ति
127. चाणक्य नीतिदर्पणः । 1।13
128. पञ्चतन्त्रम् - मित्र सम्प्राप्तिः। 144
129. गरुड़ पुराण । 110।1
130. मनुस्मृतिः। 8।15
131. महाभारत - वनपर्व। अ. 313। श्लो. 128
132. शुक्रनीतिः। 4।3।10-11
133. मनुस्मृतिः । 2।94
134. महाभारत - आदिपर्व। अ. 85। श्लो. 264
135. अविमारकम् । 1।12
136. पञ्चतन्त्रम् -मित्रभेद। 217
137. प्रबोध चन्द्रोदय;संस्कृत वाङ्मय कोश-प्रथम खण्ड। पृष्ठ 300-301
138. शुक्रनीतिः । 2।250
139. किरातार्जुनीयम् । 2।30
140. महाभाष्य । 8।1।8
141. चाणक्य नीतिदर्पणः । 2।12
142. महाभारत- वनपर्व। 313।118
143. चाणक्य नीतिदर्पणः । 6।6
144. नीतिशतकम् । 62
145. अभिज्ञान शाकुन्तलम् । 5।12
146. पञ्चतन्त्रम् - मित्र सम्प्राप्ति । 157 व मित्रभेदः। 28
147. नीति शतकम् । 35 व 25

148. वाल्मीकीय रामायण - युद्धकाण्ड। सर्ग 109। श्लो. 25
149. अध्यात्म रामायण - युद्धकाण्ड। सर्ग 12। श्लोक 33
150. मनुस्मृति । 1।86
151. पराशरस्मृति । 1।23
152. पद्मपुराण । 1।18।440
153. लिङ्गपुराण । 1।39
154. भविष्यपुराण । 1।2।119
155. संस्कृत वाङ्मय कोश - प्रथमखण्ड। पृष्ठ360 व 362
156. महाभाष्य । 5।3।99 । पतञ्जलि कालीन भारत । पृष्ठ 57
157. बुद्धचर्या - राहुल सांकृत्यायन । पृष्ठ 508-10
158. बुद्ध चरितम् - अश्वघोष । सर्ग 28। श्लोक 54-57
159. बुद्धचर्या । पृष्ठ 556
160. चीनी यात्री फाहियान का यात्रा विवरण । पृष्ठ 76
161. महाभाष्य । 3।1।26, पतञ्जलि कालीन भारत । पृष्ठ 58
162. अष्टाध्यायी पाणिनि। 4।1।117, पतञ्जलि कालीन भारत। पृष्ठ 59
163. राजतरंगिणी - कल्हण । 1।172-176
164. वहीं । 4।402 व 488-89
165. वाक्यपदीय - भर्तृहरि । 2।484-489
166. पतञ्जलि कालीन भारत । पृष्ठ 65
167. शतपथ ब्राह्मण । 6।1।11
168. शतपथ ब्राह्मण । 10।4।3।19,20
169. पुराण-परिशीलन - म. म. पं. गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी। पृ. 219।21
170. श्रीमद् भागवत महापुराण । 12।1।18
171. विष्णुपुराण । 4।24।39-42
172. प्राचीन भारत का इतिहास - डॉ. श्रीनेत्र पाण्डेय। खण्ड 1। पृ. 694
173. प्राचीन भारत के प्रमुख अभिलेख - डॉ. परमेश्वरी लाल गुप्त।खण्ड1। पृ.150।52
174. वहीं । पृ. 162।64

परिशिष्ट-१

राजा सुधन्वा की राजवंशावली

१. चाहमान
२. सामन्त देव
३. महादेव
४. कुबेर
५. बिन्दुसार
६. सुधन्वा
यह आदिशङ्कराचार्य के समकालीन थे। आदिशङ्कराचार्य को युधिष्ठिर शक संवत् २६६३ आश्विन शुक्ल १५ की तिथि से अंकित इनके द्वारा अर्पित की गयी ताम्रपत्र-विज्ञप्ति प्राप्त है।
७. वीरधन्वा
८. जयधन्वा
९. वीर सिंह
१०. वर सिंह
११. वीरदंड
१२. अरिमंत्र
१३. माणिक्यराज
१४. पुष्कर
१५. असमंजस
१६. प्रेमपुर
१७. भानुराज
१८. मानसिंह
१९. हनुमान
२०. चित्रसेन
२१. शंभू
२२. महासेन

२३. सुरथ
२४. रुद्रदत्त
२५. हेमरथ
२६. चित्रांगद
२७. चन्द्रसेन
२८. वत्सराज
२९. धृष्टद्युम्न
३०. उत्तम
३१. सुनीक
३२. सुबाहु
३३. सुरथ
३४. भरत
३५. सत्यकी
३६. शत्रुजित
३७. विक्रम
३८. सहदेव
३९. वीरदेव
४०. वसुदेव
४१. वासुदेव

इनका राज्याभिषेक विक्रम संवत् ६०८ अर्थात् ईसवी सन् ५५१ में हुआ था। इनकी एक शाखा में दिग्विजयी दिल्ली सम्राट् पृथ्वीराज चौहान (तृतीय) तथा दूसरी शाखा में महमूद गजनवी के साथ युद्ध करने वाले वीर गोगा देव हुए थे।

४२. सामन्त,
४३. नरदेव अपर नाम नृप,
४४. विग्रहराज (प्रथम),
४५. चन्द्रराज (प्रथम),
४६. गोपेन्द्र राज या गोपेन्द्रक,

४२. रणधीर
४३. शत्रुघ्न
४४. शालिवाहन
४५. कृतवर्मा
४६. सुवर्मा

४७. दुर्लभराज, विक्रम संवत् ८५० अर्थात् ईसवी सन् ७९३ में वर्तमान।	४७. दिव्यवर्मा
४८. गोविन्दराज या गुवक,	४८. यौवनाश्व
४९. चन्द्रराज (द्वितीय), विक्रम संवत् ९०० से ९२५ अर्थात् ईसवी सन् ८४३ से ८६८।	४९. हर्यश्व
५०. गुवक द्वितीय (गोविन्द राज द्वितीय), विक्रम संवत् ९२५ से ९५० अर्थात् ईसवी सन्८६८से८९३।	५०. अजयपाल
५१. चन्दन राज, विक्रम संवत् ९५० से ९७५ अर्थात् ईसवी सन्८९३ से ९१८।	५१. भटदलन
५२. वाक्पतिराज, प्रथम (वप्पयराज), विक्रम संवत्९७५से१००० अर्थात् ईसवी सन्९१८से९४३। इनके तीन पुत्र थे-विंध्यराज, सिंहराज तथा लक्ष्मण = वत्सराज ।	५२. अनंगराज
५३. सिंहराज, इनके चार पुत्र थे-विग्रहराज द्वितीय, दुर्लभराज द्वितीय,चन्द्रराज तथा गोविन्द राज।	५३. भीमदेव
५४. (क) विग्रहराज द्वितीय, विक्रम संवत् १०३० अर्थात् ईसवी सन् ९७३ से। ये इस वंश के महान् शासक थे इन्होंने गुजरात के शासक मूलराज को हराया तथा भृगुकच्छ (भड़ौच) में आशापुरा देवी का एक मन्दिर बनवाया। फिरिश्ता	५४. गोगादेव, यह ईसवी सन् १०२४ के लगभग महमूद गजनवी द्वारा भारत पर किये गये चौदहवें आक्रमण में उसके विरुद्ध बहादुरी से लड़े तथा वीरगति को प्राप्त हुए ।

के अनुसार ९९७ ईसवी सन् में
इन्होंने लाहौर के शासक की सहायता
हेतु सुबक्तगीन के विरुद्ध सैन्य बल
भेजा था। मुसलमानों के साथ भी
इन्होंने युद्ध किया था।

(ख) दुर्लभराज द्वितीय,
विक्रम संवत् १०५५ अर्थात ईस्वी सन् ९९८ में वर्तमान्। यह अपने भाई विग्रजहराज द्वितीय के बाद महाराजाधिराज हुए।

५५. गोविन्दराज तृतीय
विक्रम संवत् १०५६ अर्थात् ईस्वी सन् ९९९ में वर्तमान्। ये दुर्लभराज द्वितीय के पुत्रं थे।

५६. (क) वाक्पतिराज द्वितीय,
विक्रम संवत् १०५६ से १०७५ अर्थात् ईस्वी सन्९९९से१०१८ तक।
(ख) वीर्यराज,
विक्रम संवत् १०७५ से १०९५ अर्थात् ईस्वी सन् १०१८ से १०३८ तक। ये वाक्पतिराज द्वितीय के भाई थे।
(ग) चामुण्डराज,
विक्रम संवत् १०९५ से ११२० अर्थात् ईसवी सन् १०३८ से १०६३। ये भी वाक्पति राज द्वितीय के भाई थे।

५७. (क) सिंहत,
ये चामुण्डराज के जेष्ठ पुत्र थे।
(ख) दुर्लभराज तृतीय,
विक्रम संवत् ११२० से ११३६ अर्थात् ईसवी सन् १०६३ से १०७९ तक। ये भी चामुण्डराज के पुत्र थे।
(ग) विग्रहराज तृतीय,
ये भी दुर्लभराज तृतीय के भाई थे। विक्रम संवत् ११३६ से ११५५ अर्थात् ईस्वी सन् १०७९ से १०९८ तक।

५८. पृथ्वीराज, प्रथम

विक्रम संवत् ११५५ से ११६२ अर्थात् ईसवी सन् १०९८ से ११०५ तक।

५९. अजय राज (अजयदेव या सल्हण)

विक्रम संवत् ११६२ से ११८९ अर्थात् ईसवी सन् ११०५ से ११३२ तक। इन्होंने अजमेर नगर बसाया।

६०. अर्णोराज (अनलदेव, अन्ना या अनक उपनाम)

विक्रम संवत् ११८९ से १२०८ अर्थात् ईसवी सन् ११३२ से ११५१ तक।

६१. (क) जगदेव

विक्रम संवत् १२०८ अर्थात् ईसवी सन् ११५१। इसने उपने पिता अर्णोराज का वध कर दिया जिसके कारण इसके भाई विग्रहराज चतुर्थ ने इसका वध कर दिया।

(ख) विग्रहराज चतुर्थ अपरनाम विशलदेव

विक्रम संवत् १२०८ से १२२४ अर्थात् ईसवी सन् ११५१ से ११६७ तक। ये एक महान् पराक्रमी शासक थे इन्होंने चालुक्यों को हराया था।

६२..(क) अपर गांगेय अथवा अमर गांगेय

ये विग्रहराज चतुर्थ के पुत्र थे।

(ख) पृथ्वीराज द्वितीय (पृथ्वी भट्ट)

यह पितृहंता जगदेव का पुत्र था। अपर गांगेय को हराकर इसने राज्य प्राप्त किया विक्रम संवत् १२२६ अर्थात् ईसवी सन् ११६९ में यह निःसन्तान मरा।

६१. (ग) सोमेश्वर देव

ये विग्रहराज चतुर्थ के भाई थे। पृथ्वीराज द्वितीय के निःसंतान मरने पर इनको राजा बनाया गया। विक्रम संवत् १२२६ से १२३४ अर्थात् ईसवी सन् ११६९ से ११७७ तक इन्होंने राज्य किया।

६२. (ग) पृथ्वीराज तृतीय

विक्रम संवत् १२३४ से १२४८ अर्थात् ईसवी सन् ११७७ से ११९२ तक। यह भारत के अंतिम क्षत्रिय हिन्दू सम्राट् एवं दिग्विजयी योद्धा थे। मुहम्मद गोरी को तरावडी (=तराइन) के प्रथम संग्राम में इन्होंने बुरी तरह परास्त किया किसी तरह से वह अपनी जान बचा कर भागा परन्तु तराइन के दूसरे युद्ध में छल-प्रपंच का सहारा लेकर देशद्रोही कन्नौज राज जयचन्द की मदद से मुहम्मद गोरी ने इनको पराजित कर दिया।

परिशिष्ट-२ (क)

राजा सुधन्वा की ताम्रपत्र-विज्ञप्ति

श्रीमहाकालनाथाय नमः

श्री महाकाल्यै नमः

श्रीमत्सदाशिवापरावतारमूर्ति चतुष्षष्टिकलाविलासविहारमूर्ति बौद्धादिसर्ववादिदानवनृसिंहमूर्ति वर्णाश्रमवैदिकसिद्धान्तोद्धारकमूर्ति मामकीनसाम्राज्यव्यव स्थापनमूर्ति विश्वेश्वरविश्वगुरुपदजगज्जेगीयमानमूर्ति निखिलयोगिचक्रवर्त्ति श्रीमच्छङ्करभगवत्पादपादपद्मयोः भ्रमरायमाणसुधन्वनो मम सोमवंशचूडामणियुधिष्ठिरपारम्पर्य्यपरिप्राप्तभारतवर्षस्याञ्जलिबन्धपूर्विकेयं राजन्यस्य विज्ञप्तिः। भगवद्भिर्दिग्विजयोऽकारि। सर्वेवादिनः पराकृताः। सर्वे वर्णा आश्रमाश्च कृतयुगवत्पूर्णे वैदिकाध्वनि नियोजिताः सन्तो यथाशास्त्रमाचरन्ति हि धर्मम्। ब्रह्मविष्णुमहेश्वरमहेश्वरीस्थानान्यशेषदेशवर्त्तीन्युद्धृतानि। सर्वं ब्रह्मकुलमुद्धारितम्। विशिष्यास्मद्राज्यकुलमान्वीक्षिक्याद्यशेषराजतन्त्रपरिशीलनेनोन्नीतं भवति। ब्रह्मक्षत्राद्यस्मत्प्रमुखनिखिलविनेयलोकसम्प्रार्थनया चतस्रो धर्मराजधान्यो जगन्नाथ-बदरी-द्वारका-शृङ्गर्षिक्षेत्रेषु भोगवर्द्धन ज्योतिश्शारदा शृङ्गेरीमठापरसञ्ज्ञकाः संस्थापिताः। तत्रोत्तरदिशो योगिजनप्राधान्येन धर्ममर्यादारक्षणं सुकरमेवेति ज्योतिर्मठे श्रीतोटकापरनाम्नः प्रतर्दनाचार्यानथ शृङ्गर्ष्याश्रमे शृङ्गर्षिसमस्वभावान्पृथ्वीधराभिधेयहस्तामलकाचार्यान् भोगवर्धने स्वत एवाभिमतत्त्वेनात्यन्तोग्रस्वभावानपि सर्वज्ञकल्पपद्मपादापरनामसनन्दनाचार्यानथ बौद्धकापालिकादिसकलवादिभूयिष्ठपश्चिमस्यां दिशि वादिदैत्याङ्कुरः पुनर्माभवत्विति शारदापीठे किल द्वारकायां जैनैरुत्सादितवज्रनाभनिर्मितभगवदालयादिदुर्दशां दूरीकृत्य भगवद्भिस्त्रिलोकसुन्दरनाम्ना पुनस्सन्निबद्धभगवदालयश्रीकृष्णादिसकलमर्यादासुसंस्कृतायामधिगताशेषलौकिकवैदिकतन्त्रविश्वविख्यातकीर्तिसर्वज्ञानमयान्विश्वरूपापरनामसुरेश्वराचार्यांश्चास्मत्सर्वलोकाभिमतिपूर्वकमभिषिच्यैवं चतुर्भ्य आचार्य्येभ्यश्चतस्रोदिश आदिष्टा भारतवर्षस्य। त एते तत्तत्पीठप्रणाड्या निजनिजमेव मण्डलं गोपायन्तो वैदिकमार्गमुद्धासयन्तु। सर्वे वयं तत्तन्मण्डलस्था ब्रह्मक्षत्रादयस्तत्तन्मण्डलस्यैवाचार्यस्याधिकाराधिकृता वर्तिष्यामहे च । महद्विनिर्णयप्रसक्तौ तु सुरेश्वराचार्य्या एवोक्तलक्षणतः सर्वत्रैव व्यवस्थापका भवन्तु भगवतामनुशासनाच्च। अस्मद्राजसत्तेव निरङ्कुशगुरु-

सत्ताप्युक्तमर्यादया जगत्यविचलं विचलतु। परिव्राजको हि महाकुलीनत्त्ववैदुष्यादिविशिष्टाचार्यलक्षणैरन्वित एव श्रीभगवत्पादपीठानामधिकारमर्हति न तु विनिमयेनेत्येवमादिनियमबन्धो भगवदाज्ञासमवबुद्धस्समस्तैरथास्मदादिब्रह्मक्षत्रादि वंशोद्भवैः परमप्रेम्णोत्तमाङ्गेनाद्रियत इत्येतां विज्ञप्तिमङ्गीकुर्वन्तु भगवन्त इति स्वस्त्यस्तु लोकेभ्यः। युधिष्ठिरशके २६६३ आश्विनशुक्ल १५।

सुधन्वा सार्वभौमः

परिशिष्ट- २ (ख)

राजा सुधन्वा की ताम्रपत्र-विज्ञप्ति का हिन्दी भाषान्तर

श्री महाकालनाथ को नमस्कार
श्री महाकाली को नमस्कार

श्रीमत् सदाशिव की अपरावतार मूर्ति, चौसठ कलाओं के विलास की विहार मूर्ति, बौद्ध आदि समस्त वादिरूप दानवों के लिये नृसिंह मूर्ति, वर्णाश्रमयुक्त वैदिक सिद्धांत की उद्धारक मूर्ति, मेरे साम्राज्य की व्यवस्थापक मूर्ति, विश्वेश्वर और जगद्गुरु पद से संसार द्वारा गेय मूर्ति, सम्पूर्ण योगियों के चक्रवर्ती श्रीमत् शङ्कर भगवत्पाद के पादपद्मों के भ्रमर मुझ राजा सुधन्वा की, जिसे सोमवंश चूडामणि युधिष्ठिर की परम्परा से भारतवर्ष की राजसत्ता प्राप्त है करबद्ध विज्ञप्ति। भगवत् ने दिग्विजय कर लिया है। सभी वादियों को पराजित कर दिया है। समस्त वर्ण और आश्रम इस समय सत्ययुग के समान वैदिकमार्ग में नियुक्त होकर शास्त्रानुसार धर्माचरण कर रहे हैं।(भगवत्पाद) सम्पूर्ण देश में अवस्थित ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर तथा महेश्वरी के देवस्थानों का उद्धार कर चुके हैं। समस्त ब्राह्मण कुलों का उद्धार कर चुके हैं। विशेषकर आन्वीक्षकी आदि अन्य राजतंत्र के परिशीलन से हम राजकुलों की उन्नति हुई है। हमलोगों जैसे प्रमुख ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि तथा सम्पूर्ण लोक की प्रार्थना पर (भगवत्पाद ने)चार धर्मराजधानियों को गोवर्धन, ज्योति, शारदा तथा शृङ्गेरी मठ के नाम से जगन्नाथ, बदरी, द्वारका तथा शृङ्ग ऋषि के क्षेत्र में संस्थापित किया। वहाँ उत्तर दिशा में योगिजनों की प्रधानता से धर्ममर्यादा की रक्षा सरलता से करने हेतु ज्योतिर्मठ में श्री तोटक अपरनाम प्रतर्दनाचार्य को, शृङ्गऋषि के आश्रम में उन्हीं के समान स्वभाव वाले पृथ्वीधर अपरनाम हस्तामलकाचार्य को, भोगवर्द्धन में अपने से ही विचारणीय विषयों में अभिमत रखने वाले, अत्यन्त उग्रस्वभाव के होने पर भी

सब कुछ जानने में समर्थ पद्मपाद अपरनाम सनन्दनाचार्य को तथा बौद्ध कापालिक आदि समस्त वादियों से भरपूर पश्चिम दिशा में वादिदैत्याङ्कुर पुनः अंकुरित न हो जाये इस प्रयोजन से शारदापीठ द्वारका में (कृष्ण के प्रपौत्र) वज्रनाभ द्वारा निर्मित तथा जैनियों के द्वारा ध्वस्त भगवदालय की दुर्दशा को दूर कर त्रैलोक्य सुन्दर नामक पुनः निर्मित भगवदालय में श्रीकृष्ण को सम्पूर्ण मर्यादा से सुसंस्कृत कर प्रतिष्ठित कर समस्त लौकिक तथा वैदिक तंत्र में विश्वविख्यात कीर्ति प्राप्त सर्वज्ञानमय विश्वरूप अपरनाम सुरेश्वराचार्य को हम सब लोगों की लोक सम्मति से अभिषिक्त कर भारतवर्ष की चारों दिशाओं में चार आचार्यो को अधिष्ठित कर आदेश दिया कि वे अपने अपने पीठ की मर्यादा के अनुसार अपने अपने मण्डल की रक्षा करते हुए वैदिक मार्ग को उद्‌भासित करें। हम सभी उन मण्डलस्थ ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि उन मण्डलों के अधिकारी आचार्यों की आज्ञा का पालन करते हुए व्यवहार करें। महत्वपूर्ण निर्णय की स्थिति में उपर्युक्त लक्षणों से युक्त सुरेश्वराचार्य सर्वत्र व्यवस्थापक हों यह भगवत्पाद का अनुशासन है। हमारी राज सत्ता के समान निरंकुश गुरुसत्ता मर्यादानुसार संसार में अविचल रूप से अच्छी तरह चले। महाकुलीन, वैदुष्यादि विशिष्ट आचार्य गुणों से युक्त परिव्राजक ही श्री भगवत्पाद के पीठों में अधिकार रखता है किसी प्रकार के विनिमय से नहीं । भगवत्पाद की आज्ञानुसार नियमों में बँधे हुए हम सभी ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि वंशों में उत्पन्न हुए लोग परम प्रेम से इस आज्ञा को स्वीकार करते हैं। इस विज्ञप्ति को भगवन्त स्वीकार करें। विश्व का कल्याण हो। युधिष्ठिर शक २६६३ आश्विन शुक्ल १५।

सम्राट् सुधन्वा

टिप्पणी : डॉ. दशरथ शर्मा अभिलेखीय साक्ष्यों के आधार पर लिखते हैं कि गोत्रोच्चार के अनुसार चौहान सोमवंशी ठहरते हैं। इतिहासकार श्यामल दास के अनुसार अग्निकुल के राजपूत मूलतः चन्द्रवंशी और सूर्यवंशी क्षत्री थे । कालान्तर में इन्होंने बौद्धमत अपना लिया था जिसके कारण व्रात्यस्तोम यज्ञ करके इन्हें पुनः सनातन पंथ की मुख्य धारा में लाना पड़ा। यज्ञाग्नि से इनका पुनः संस्कार होने के कारण ये अग्निकुल के राजपूत कहलाये। कर्नल टाड चौहानों को सोमवंश की एक शाखा (यदुवंश) से सम्बन्धित मानते हैं। सुधन्वा अपने को युधिष्ठिर की परम्परा से प्राप्त राज्य का स्वामी कहते हैं। महाभारत से ज्ञात होता है कि युधिष्ठिर ने यादवों के गृहयुद्ध के पश्चात् अन्धकवंशी कृतवर्मा के पुत्र को मार्तिकावत, शिनिवंशी सात्यकि

के पुत्र यौयुधानि को सरस्वती नदी के तटवर्ती क्षेत्रों तथा इन्द्रप्रस्थ का राज्य श्री कृष्ण के प्रपौत्र वज्रनाभ को, श्री कृष्ण की मृत्यु के पश्चात् दे दिया था। माहिष्मती का राज्य भी युधिष्ठिर द्वारा ही वहाँ के राजा को दिया गया था यह जैमिनी के अश्वमेध पर्व से ज्ञात होता है। कर्नल टाड, डॉ. रमेशचन्द्र मजुमदार एवं राजस्थानी इतिवृत्त चौहानों का मूल राज्य माहिष्मती को ही मानते हैं।

परिशिष्ट-३

शारदापीठ-द्वारका की आचार्य परम्परा

आचार्य नाम	आचार्यत्व समापन की तिथि	पीठासीनकाल लगभग
१-श्री सुरेश्वराचार्य	चैत्र कृष्ण ८ यु. सं. २६९१ तुल्य ई. पू. ४४७।	४२ वर्ष
२-श्री चित्सुखाचार्य	पौष शुक्ल ३ यु. सं. २७१५ तुल्य ई. पू. ४२३।	२४ वर्ष
३-श्री सर्वज्ञानाचार्य	श्रावण शुक्ल ११ यु.सं.२७७४ तुल्य ई.पू. ३६४।	५९ वर्ष
४- श्री ब्रह्मानन्दतीर्थ	श्रावण शुक्ल १ यु. सं.२८२३ तुल्य ई. पू. ३१५।	४९ वर्ष
५- श्री स्वरूपाभिज्ञानाचार्य	ज्येष्ठ अमावस्या यु. सं. २८९० तुल्य ई. पू. २४८।	६७ वर्ष
६- श्री मंगलमूर्त्याचार्य	पौष शुक्ल १४ यु. सं. २९४२ तुल्य ई०पू०१९६।	५२ वर्ष
७- श्री भास्कराचार्य	पौष शुक्ल १२ यु. सं. २९६५ तुल्य ई. पू. १७३।	२३ वर्ष
८-श्री प्रज्ञानाचार्य	आषाढ़ शुक्ल ७ यु. सं. ३००८ तुल्य ई. पू. १३०।	४३ वर्ष
९-श्री ब्रह्मज्योत्सनाचार्य	चैत्र कृष्ण ४ यु. सं. ३०४० तुल्य ई.पू. ९८।	३२ वर्ष
१०-श्री आनन्दाविर्भावाचार्य	फाल्गुन शुक्ल ९ वि. सं. ९ तुल्य ई. पू. ४७।	५१ वर्ष
११- श्री कलानिधि तीर्थ	पौष शुक्ल ६ वि. सं. ८२ तुल्य ई. सन् २६।	७३ वर्ष
१२-श्री चिद्विलासाचार्य	मार्गशीर्ष शुक्ल १३ वि. सं. ११९ तुल्य ई. सन् ६३।	३७ वर्ष
१३-श्री विभूत्यानन्दाचार्य	श्रावण कृष्ण ११ वि. सं. १५४ तुल्य ई. सन् ९८।	३५ वर्ष
१४-श्री स्फूर्त्तिनिलयपाद	आषाढ़ शुक्ल ६ वि. सं. २०३ तुल्य ई. सन् १४७।	४९ वर्ष

१५-श्री वरतन्तुपाद	आषाढ़ कृष्ण ३ वि. सं. २५९ तुल्य ई. सन् २०३।	५६ वर्ष
१६-श्री योगरूढ़ाचार्य	मार्गशीर्ष कृष्ण ११ वि. सं. ३६० तुल्य ई. सन् ३०४।	१०१ वर्ष
१७-श्री विजयडिण्डिमाचार्य	पौष कृष्ण ८ वि. सं. ३९४ तुल्य ई. सन् ३३८।	३४ वर्ष
१८-श्री विद्यातीर्थ	चैत्र शुक्ल १ वि. सं. ४३७ तुल्य ई. सन् ३८१।	४३ वर्ष
१९- श्री चिच्छक्तिदेशिक	आषाढ़ शुक्ल १२ वि. सं. ४३८ तुल्य ई. सन् ३८२।	०१ वर्ष
२०-श्री विज्ञानेश्वर तीर्थ	आश्विन शुक्ल १५ वि. सं. ५११ तुल्य ई. सन् ४५५।	७३ वर्ष
२१- श्री ऋतम्भराचार्य	माघ शुक्ल १० वि. सं. ५७२ तुल्य ई. सन् ५१६।	६१ वर्ष
२२- श्री अमरेश्वर गुरु	भाद्रपद कृष्ण ६ वि. सं. ६०८ तुल्य ई. सन् ५५२।	३६ वर्ष
२३- श्री सर्वतोमुख तीर्थ	पौष शुक्ल ४ वि. सं. ६६९ तुल्य ई. सन् ६१३।	६१ वर्ष
२४- श्री आनन्ददेशिक	वैशाख कृष्ण ५ वि. सं. ७२१ तुल्य ई. सन् ६६५।	५२ वर्ष
२५- श्री समाधिरसिक	फाल्गुन शुक्ल १२ वि. सं. ७९९ तुल्य ई. सन् ७४३।	७८ वर्ष
२६- श्री नारायणाश्रम	चैत्र शुक्ल १४ वि. सं. ८३६ तुल्य ई. सन् ७८०।	३७ वर्ष
२७- श्री वैकुण्ठाश्रम	आषाढ़ कृष्ण ६ वि. सं. ८८५ तुल्य ई. सन् ८२९।	४९ वर्ष
२८-श्री (त्रि)विक्रमाश्रम	आषाढ़ शुक्ल ३ वि. सं. ९११ तुल्य ई. सन् ८५५।	२६ वर्ष
२९- श्री नृसिंहाश्रम	ज्येष्ठ कृष्ण १४ वि. सं. ९६० तुल्य ई. सन् ९०४।	४९ वर्ष
३०- श्री त्र्यम्बकाश्रम	वैशाख अमावस्या वि. सं. ९६५ तुल्य ई. सन् ९०९।	०५ वर्ष
३१- श्री विष्णवाश्रम	ज्येष्ठ शुक्ल १ वि. सं. १००१ तुल्य ई. सन् ९४५।	३६ वर्ष

३२- श्री केशवाश्रम	माघ कृष्ण ५ वि. सं. १०६० तुल्य ई. सन् १००४।	५९ वर्ष
३३- श्री चिदम्बराश्रम	मार्गशीर्ष कृष्ण ९ वि. सं. १०८३ तुल्य ई. सन् १०२७।	२३ वर्ष
३४- श्री पद्मनाभाश्रम	ज्येष्ठ शुक्ल १५ वि. सं. ११०९ तुल्य ई. सन् १०५३।	२६ वर्ष
३५- श्री महादेवाश्रम	श्रावण कृष्ण ९ वि. सं. ११४८ तुल्य ई. सन् १०९२।	३९ वर्ष
३६- श्री सच्चिदानन्दाश्रम	आश्विन कृष्ण ५ वि. सं. १२०७ तुल्य ई. सन् ११५१।	५९ वर्ष
३७- श्री विद्याशङ्कराश्रम	आश्विन कृष्ण ४ वि. सं. १२६५ तुल्य ई. सन् १२०९।	५८ वर्ष
३८- श्री अभिनव सच्चिदानन्दाश्रम	वैशाख शुक्ल ६ वि. सं. १२९३ तुल्य ई. सन् १२३७।	२८ वर्ष
३९- श्री शशिशेखराश्रम	वैशाख शुक्ल १ वि. सं. १३२६ तुल्य ई. सन् १२७०।	३३ वर्ष
४०- श्री वासुदेवाश्रम	फाल्गुन कृष्ण १० वि. सं. १३६२ तुल्य ई. सन् १३०६।	३६ वर्ष
४१- श्री पुरुषोत्तमाश्रम	माघ कृष्ण ५ वि. सं. १३९४ तुल्य ई. सन् १३३८।	३२ वर्ष
४२- श्री जर्नादनाश्रम	भाद्रपद शुक्ल १५ वि. सं. १४०८ तुल्य ई. सन् १३५२।	१४ वर्ष
४३- श्री हरिहराश्रम	श्रावण शुक्ल ११ वि. सं. १४११ तुल्य ई. सन् १३५५।	०३ वर्ष
४४- श्री भवाश्रम	वैशाख कृष्ण ५ वि. सं. १४२१ तुल्य ई. सन् १३६५।	१० वर्ष
४५- श्री ब्रह्माश्रम	आषाढ़ शुक्ल ९ वि. सं. १४३६ तुल्य ई. सन् १३८०।	१५ वर्ष
४६- श्री वामनाश्रम	चैत्र कृष्ण १२ वि. सं. १४५३ तुल्य ई. सन् १३९७।	१७ वर्ष
४७- श्री सर्वज्ञाश्रम	चैत्र कृष्ण ८ वि. सं. १४८९ तुल्य ई. सन् १४३३।	३६ वर्ष
४८- श्री प्रद्युम्नाश्रम	चैत्र शुक्ल ७ वि. सं. १४९५ तुल्य ई. सन् १४३९।	०६ वर्ष

४९- श्री गोविन्दाश्रम	ज्येष्ठ कृष्ण ४ वि. सं. १५२३ तुल्य ई. सन् १४६७।	२८ वर्ष
५०- श्री चिदाश्रम	फाल्गुन शुक्ल २ वि. सं. १५७६ तुल्य ई. सन् १५२०।	५३ वर्ष
५१- श्री विश्वेश्वराश्रम	मार्गशीर्ष शुक्ल १ वि. सं. १६०८ तुल्य ई. सन् १५५२।	३२ वर्ष
५२- श्री दामोदराश्रम	चैत्र कृष्ण ५ वि. सं. १६१५ तुल्य ई० सन् १५५९।	०७ वर्ष
५३- श्री महादेवाश्रम	चैत्र शुक्ल १ वि. सं. १६१६ तुल्य ई. सन् १५६०।	०१ वर्ष
५४- श्री अनिरुद्धाश्रम	माघ कृष्ण ४ वि. सं. १६२५ तुल्य ई. सन् १५६९।	०९ वर्ष
५५- श्री अच्युताश्रम	श्रावण कृष्ण ६ वि. सं. १६२९ तुल्य ई. सन् १५७३।	०४ वर्ष
५६- श्री माधवाश्रम	माघ कृष्ण ४ वि. सं. १६६५ तुल्य ई. सन् १६०९।	३६ वर्ष
५७- श्री अनन्ताश्रम	चैत्र शुक्ल १२ वि. सं. १७१६ तुल्य ई. सन् १६६०।	५१ वर्ष
५८- श्री विश्वरूपाश्रम	श्रावण कृष्ण २ वि. सं. १७२१ तुल्य ई. सन् १६६५।	०५ वर्ष
५९- श्री चिद्घनाश्रम	माघ शुक्ल ६ वि. सं. १७२६ तुल्य ई. सन् १६७०।	०५ वर्ष
६०- श्री नृसिंहाश्रम	वैशाख शुक्ल ४ वि०सं०१७३५ तुल्य ई. सन् १६७९।	०९ वर्ष
६१- श्रीमनोहराश्रम	भाद्र शुक्ल ९ वि. सं. १७६१ तुल्य ई. सन् १७०५।	२६ वर्ष
६२- श्री प्रकाशानन्द सरस्वती	आश्विन कृष्ण ६ वि. सं. १७९५ तुल्य ई. सन् १७३९।	३४ वर्ष
६३- श्री विशुद्धानन्दाश्रम	वैशाख अमावस्या वि. सं. १७९९ तुल्य ई. सन् १७४३।	०४ वर्ष
६४- श्री वामनेन्द्राश्रम	श्रावण शुक्ल ६ वि. सं. १८३१ तुल्य ई. सन् १७७५।	३२ वर्ष
६५- श्री केशवाश्रम	कार्तिक कृष्ण ९ वि. सं. १८३८ तुल्य ई. सन् १७८२।	०७ वर्ष

६६- श्री मधुसूदनाश्रम	माघ शुक्ल ५ वि. सं. १८४८ तुल्य ई. सन् १७९२।	१० वर्ष
६७- श्री हयग्रीवाश्रम	वि. सं. १८६२ तुल्य ई. सन् १८०६।	१४ वर्ष
६८- श्री प्रकाशाश्रम	वि. सं. १८६३ तुल्य ई. सन् १८०७।	०१ वर्ष
६९- श्री हयग्रीवानन्द सरस्वती	वि. सं. १८७४ तुल्य ई. सन् १८१८।	११ वर्ष
७०- श्री श्रीधराश्रम	वि. सं. १९१४ तुल्य ई. सन् १८५८।	४० वर्ष
७१-श्री दामोदराश्रम	वि. सं. १९२८ तुल्य ई. सन् १८७३।	१४ वर्ष
७२- श्री केशवाश्रम	आश्विन कृष्ण ७ वि. सं. १९३५ तुल्य ई. सन् १८७९।	०७ वर्ष
७३- श्री राजराजेश्वरशङ्कराश्रम	आषाढ़ शुक्ल ५ वि. सं. १९५७ तुल्य ई. सन् १९०१।	२२ वर्ष
७४- श्री माधवतीर्थ	भाद्रपद अमावस्या वि. सं. १९७२ तुल्य ई. सन् १९१६।	१४ वर्ष
७५- श्री शान्त्यानन्द सरस्वती	वि. सं. १९८२ तुल्य ई. सन् १९२६।	१० वर्ष
७६- श्री चन्द्रशेखराश्रम	वि. सं. २००१ तुल्य ई. सन् १९४५।	१९ वर्ष
७७-श्री अभिनवसच्चिदानन्द	वि. सं. २०३८ तुल्य ई. सन् १९८२।	३७ वर्ष
७८- श्री स्वरूपानन्द सरस्वती		अबतक वर्तमान

टिप्पणी -१ ७६वें आचार्य श्रीअभिनव सच्चिदानन्द का अभिषेक ज्येष्ठ शुक्ल १० विक्रम् संवत् २००१ तुल्य ई. संन् २० जून १९४५ को हुआ था।

-२ अ०श्री जगद्गुरु शङ्कराचार्य स्वरूपानन्द सरस्वती, ७८ वें आचार्य का अभिषेक ज्येष्ठ शुक्ल ५ विक्रम संवत् २०३८ तुल्य ई०सन् २७ मई १९८२ को हुआ था तब से अब तक वे शंकराचार्य के पद पर विराजमान हैं।

-३ उपर्युक्त सूची में काल क्रम गुजरात में प्रचलित विक्रम संवत् में दिया गया है। वहाँ पर विक्रम संवत् का आरम्भ कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा से माना जाता है जिसके कारण देश के अन्य हिस्सों में प्रचलित विक्रम सम्वत् से गुजरात का विक्रम सम्वत् सात माह पश्चात् आरम्भ होता है। अतः गुजरात के विक्रम सम्वत् को ईसवी सन् में परिवर्तित करने के लिए ५६ अथवा ५७ वर्ष घटाना पडता है। यहाँ पर सर्वत्र ५६ वर्ष का ही वियोग किया गया है जिसके कारण ईसवी सन् में दिये गये वर्ष में कहीं कहीं एक वर्ष का अन्तर हो सकता है। इसीप्रकार से आचार्यत्व काल भी निकटतम वर्षों में दिया गया है परन्तु कहीं कहीं एक वर्ष का अन्तर हो सकता है।

-४ १ से २९ क्रमाङ्कों पर आने वाले आचार्यों के आचार्यत्व

की समापन की तिथि ईसवी सन् की नौवी सदी की एक उपलब्ध सूची के आधार पर इस पीठ के २९ वें तथा ७५ वें आचार्यों द्वारा अलग-अलग तैयार की गई है। २९ वें आचार्य ने अपने विमर्श ग्रन्थ में लिखा है कि उक्त सूची गलिताक्षरों में उपलब्ध थी जिसके कारण कुछ तिथियों को पढ़ने में असुविधा थी। पश्चात् ७५ वें आचार्य ने अन्य उपलब्ध स्रोतों के आधार पर पूर्ण पाठ पढ़कर सूची प्रकाशित किया। इस सूची में २१ वें क्रम पर आने वाले आचार्य का नाम विमर्श के रचनाकार नहीं पढ़ सके थे जिसके कारण उनके द्वारा तैयार की गई सूची में इनका नाम नहीं पाया जाता। १५ वें आचार्य का काल २९ वें आचार्य ने उक्त सूची के पाठ को २४९ तथा ७५ वें आचार्य ने २५९ पढ़ा जिसके आधार पर १६ वें आचार्य का आचार्यत्व काल क्रमशः १११ व १०१ वर्ष प्राप्त होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि उपर्युक्त दोनों ही पाठ शुद्ध नहीं पढ़े जा सके हैं सम्भवतः शुद्ध पाठ २८९ है। मध्य के ८ को ही गलिताक्षरों में होने के कारण क्रमशः ४ व ५ पढ़ा गया। इस पाठ को मानने पर हमें १५ वें व १६ वें आचार्यों का आचार्यत्वकाल क्रमशः ८६ वर्ष व ७१ वर्ष प्राप्त होता है।

परिशिष्ट-४

गोवर्द्धनपीठ-पुरी की आचार्य परम्परा

आचार्य नाम	आचार्यत्व समापन वर्ष	पीठासीन काल लगभग
१-श्री पद्मपाद	गत कलि संवत् २६४२ तुल्य ईसवी सन् पूर्व ४५९।	२७ वर्ष
२-श्री शूलपाणि	गत कलि संवत् २६६२ तुल्य ईसवी सन् पूर्व ४३९।	२० वर्ष
३-श्री नारायण	गत कलि संवत् २६७९ तुल्य ईसवी सन् पूर्व ४२२।	१७ वर्ष
४-श्री विद्यारण्य	गत कलि संवत् २६९७ तुल्य ईसवी सन् पूर्व ४०४।	१८ वर्ष
५-श्री वामदेव	गत कलि संवत् २७१३ तुल्य ईसवी सन् पूर्व ३८८।	१६ वर्ष
६-श्री पद्मनाभ	गत कलि संवत् २७२८ तुल्य ईसवी सन् पूर्व ३७३।	१५ वर्ष
७-श्री जगन्नाथ	गत कलि संवत् २७४२ तुल्य ईसवी सन् पूर्व ३५९।	१४ वर्ष
८-श्री मधुरेश्वर	गत कलि संवत् २७५२ तुल्य ईसवी सन् पूर्व ३४९।	१० वर्ष
९-श्री गोविन्द	गत कलि संवत् २७७३ तुल्य ईसवी सन् पूर्व ३२८।	२१ वर्ष
१०-श्री श्रीधर	गत कलि संवत् २७९१ तुल्य ईसवी सन् पूर्व ३१०।	१८ वर्ष
११-श्री माधवानन्द	गत कलि संवत् २८०८ तुल्य ईसवी सन् पूर्व २९३।	१७ वर्ष
१२-श्री कृष्णब्रह्मानन्द	गत कलि संवत् २८२६ तुल्य ईसवी सन् पूर्व २७५।	१८ वर्ष
१३-श्री रामानन्द	गत कलि संवत् २८४२ तुल्य ईसवी सन् पूर्व २५९।	१६ वर्ष
१४-श्री वागीश्वर	गत कलि संवत् २८५७ तुल्य ईसवी सन् पूर्व २४४।	१५ वर्ष
१५-श्री परमेश्वर	गत कलि संवत् २८७१ तुल्य ईसवी सन् पूर्व २३०।	१४ वर्ष
१६-श्री गोपाल	गत कलि संवत् २८८३ तुल्य ईसवी सन् पूर्व २१८।	१२ वर्ष
१७-श्री जनार्दन	गत कलि संवत् २८९७ तुल्य ईसवी सन् पूर्व २०४।	१४ वर्ष
१८-श्री ज्ञानानन्द	गत कलि संवत् २९१७ तुल्य ईसवी सन् पूर्व १८४।	२० वर्ष
१९-श्री बृहदारण्य	गत कलि संवत् २९३६ तुल्य ईसवी सन् पूर्व १६५।	१९ वर्ष
२०-श्री महादेव	गत कलि संवत् २९५४ तुल्य ईसवी सन् पूर्व १४७।	१८ वर्ष
२१-श्री परमब्रह्मानन्द	गत कलि संवत् २९७० तुल्य ईसवी सन् पूर्व १३१।	१६ वर्ष
२२- श्री रामानन्द	गत कलि संवत् २९८५ तुल्य ईसवी सन् पूर्व ११६।	१५ वर्ष
२३- श्री सदाशिव	गत कलि संवत् २९९९ तुल्य ईसवी सन् पूर्व १०२।	१४ वर्ष
२४- श्री हरीश्वरानन्द	गत कलि संवत् ३०११ तुल्य ईसवी सन् पूर्व ९०।	१२ वर्ष
२५- श्री बोधानन्द	गत कलि संवत् ३०२५ तुल्य ईसवी सन् पूर्व ७६।	१४ वर्ष
२६- श्री-रामकृष्ण	गत कलि संवत् ३०४५ तुल्य ईसवी सन् पूर्व ५६।	२० वर्ष
२७- श्री चिद्बोधात्म	गत कलि संवत् ३०५५ तुल्य ईसवी सन् पूर्व ४६।	१० वर्ष

२८- श्री तत्वक्षवर गत कलि संवत् ३०७३ तुल्य ईसवी सन् पूर्व २८। १८ वर्ष
२९- श्री शङ्कर गत कलि संवत् ३०८९ तुल्य ईसवी सन् पूर्व १२। १६ वर्ष
३०- श्री वासुदेव गत कलि संवत् ३१०९ तुल्य ईसवी सन् ८। २० वर्ष
३१- श्री हयग्रीव गत कलि संवत् ३१२६ तुल्य ईसवी सन् २५। १७ वर्ष
३२- श्री स्मृतीश्वर गत कलि संवत् ३१४० तुल्य ईसवी सन् ३९। १४ वर्ष
३३- श्री विद्यानन्द गत कलि संवत् ३१६० तुल्य ईसवी सन् ५९। २० वर्ष
३४- श्री मुकुन्दानन्द गत कलि संवत् ३१७८ तुल्य ईसवी सन् ७७। १८ वर्ष
३५- श्री हिरण्यगर्भ गत कलि संवत् ३१९७ तुल्य ईसवी सन् ९६। १९ वर्ष
३६- श्री नित्यानन्द गत कलि संवत् ३२१५ तुल्य ईसवी सन् ११४। १८ वर्ष
३७- श्री शिवानन्द गत कलि संवत् ३२३१ तुल्य ईसवी सन् १३०। १६ वर्ष
३८- श्री योगीश्वर गत कलि संवत् ३२४९ तुल्य ईसवी सन् १४८। १८ वर्ष
३९- श्री सुदर्शन गत कलि संवत् ३२६४ तुल्य ईसवी सन् १६३। १५ वर्ष
४०- श्री व्योमकेश गत कलि संवत् ३२८१ तुल्य ईसवी सन् १८०। १७ वर्ष
४१- श्री दामोदर गत कलि संवत् ३३०२ तुल्य ईसवी सन् २०१। २१ वर्ष
४२- श्री योगानन्द गत कलि संवत् ३३२२ तुल्य ईसवी सन् २२१। २० वर्ष
४३- श्री गोलकेश गत कलि संवत् ३३४३ तुल्य ईसवी सन् २४२। २१ वर्ष
४४- श्री कृष्णानन्द गत कलि संवत् ३३६१ तुल्य ईसवी सन् २६०। १८ वर्ष
४५- श्री देवानन्द गत कलि संवत् ३३८४ तुल्य ईसवी सन् २८३। २३ वर्ष
४६- श्री चन्द्रचूड़ गत कलि संवत् ३३९९ तुल्य ईसवी सन् २९८। १५ वर्ष
४७- श्री हलायुध गत कलि संवत् ३४१३ तुल्य ईसवी सन् ३१२। १४ वर्ष
४८- श्री सिद्धसेव्य गत कलि संवत् ३४२८ तुल्य ईसवी सन् ३२७। १५ वर्ष
४९- श्री तारकात्मा गत कलि संवत् ३४४८ तुल्य ईसवी सन् ३४७। २० वर्ष
५०- श्री बोधायन गत कलि संवत् ३४६९ तुल्य ईसवी सन् ३६८। २१ वर्ष
५१- श्री श्रीधर गत कलि संवत् ३४८८ तुल्यं ईसवी सन् ३८७। १९ वर्ष
५२- श्री नारायण गत कलि संवत् ३५०६ तुल्य ईसवी सन् ४०५। १८ वर्ष
५३- श्री सदाशिव गत कलि संवत् ३५२१ तुल्य ईसवी सन् ४२०। १५ वर्ष
५४- श्री जयकृष्ण गत कलि संवत् ३५३४ तुल्य ईसवी सन् ४३३। १३ वर्ष
५५- श्री विरूपाक्ष गत कलि संवत् ३५४५ तुल्य ईसवी सन् ४४४। ११ वर्ष
५६- श्री विद्यारण्य गत कलि संवत् ३५५२ तुल्य ईसवी सन् ४५१। ०७ वर्ष
५७- श्री विशेश्वर गत कलि संवत् ३५७२ तुल्य ईसवी सन् ४७१। २० वर्ष
५८- श्री विबुधेश्वर गत कलि संवत् ३५९५ तुल्य ईसवी सन् ४९४। २३ वर्ष
५९- श्री महेश्वर गत कलि संवत् ३६१६ तुल्य ईसवी सन् ५१५। २१ वर्ष
६०- श्री मधुसूदन गत कलि संवत् ३६३५ तुल्य ईसवी सन् ५३४। १९ वर्ष

६१- श्री रघूत्तम	गत कलि संवत् ३६५० तुल्य ईसवी सन् ५४९।	१५ वर्ष
६२- श्री रामचन्द्र	गत कलि संवत् ३६६३ तुल्य ईसवी सन् ५६२।	१३ वर्ष
६३- श्री योगीन्द्र	गत कलि संवत् ३६७४ तुल्य ईसवी सन् ५७३।	११ वर्ष
६४- श्री महेश्वर	गत कलि संवत् ३६८१ तुल्य ईसवी सन् ५८०।	०७ वर्ष
६५- श्री ओंकार	गत कलि संवत् ३७०८ तुल्य ईसवी सन् ६०७।	२७ वर्ष
६६- श्री नारायण	गत कलि संवत् ३७३० तुल्य ईसवी सन् ६२९।	२२ वर्ष
६७- श्री जगन्नाथ	गत कलि संवत् ३७५१ तुल्य ईसवी सन् ६५०।	२१ वर्ष
६८- श्री श्रीधर	गत कलि संवत् ३७७० तुल्य ईसवी सन् ६६९।	१९ वर्ष
६९- श्री रामचन्द्र	गत कलि संवत् ३७८३ तुल्य ईसवी सन् ६८२।	१३ वर्ष
७०- श्री ताम्राक्ष	गत कलि संवत् ३७९५ तुल्य ईसवी सन् ६९४।	१२ वर्ष
७१- श्री उग्रेश्वर	गत कलि संवत् ३८१० तुल्य ईसवी सन् ७०९।	१५ वर्ष
७२- श्री उद्दण्ड	गत कलि संवत् ३८२८ तुल्य ईसवी सन् ७२७।	१८ वर्ष
७३- श्री संकर्षण	गत कलि संवत् ३८५० तुल्य ईसवी सन् ७४९।	२२ वर्ष
७४- श्री जनार्दन	गत कलि संवत् ३८७१ तुल्य ईसवी सन् ७७०।	२१ वर्ष
७५- श्री अखण्डात्मा	गत कलि संवत् ३८८४ तुल्य ईसवी सन् ७८३।	१३ वर्ष
७६- श्री दामोदर	गत कलि संवत् ३८९६ तुल्य ईसवी सन् ७९५।	१२ वर्ष
७७- श्री शिवानन्द	गत कलि संवत् ३९११ तुल्य ईसवी सन् ८१०।	१५ वर्ष
७८- श्री गदाधर	गत कलि संवत् ३९२९ तुल्य ईसवी सन् ८२८।	१८ वर्ष
७९- श्री विद्याधर	गत कलि संवत् ३९५१ तुल्य ईसवी सन् ८५०।	२२ वर्ष
८०- श्री वामन	गत कलि संवत् ३९७२ तुल्य ईसवी सन् ८७१।	२१ वर्ष
८१- श्री शङ्कर	गत कलि संवत् ३९८६ तुल्य ईसवी सन् ८८५।	१४ वर्ष
८२- श्री नीलकण्ठ	गत कलि संवत् ३९९७ तुल्य ईसवी सन् ८९६।	११ वर्ष
८३- श्री रामकृष्ण	गत कलि संवत् ४०१७ तुल्य ईसवी सन् ९१६।	२० वर्ष
८४- श्री रघूत्तम	गत कलि संवत् ४०३७ तुल्य ईसवी सन् ९३६।	२० वर्ष
८५- श्री दामोदर	गत कलि संवत् ४०४७ तुल्य ईसवी सन् ९४६।	१० वर्ष
८६- श्री गोपाल	गत कलि संवत् ४०६० तुल्य ईसवी सन् ९५९।	१३ वर्ष
८७- श्री मृत्युञ्जय	गत कलि संवत् ४०८१ तुल्य ईसवी सन् ९८०।	२१ वर्ष
८८- श्री गोविन्द	गत कलि संवत् ४१०३ तुल्य ईसवी सन् १००२।	२२ वर्ष
८९- श्री वासुदेव	गत कलि संवत् ४११५ तुल्य ईसवी सन् १०१४।	१२ वर्ष
९०- श्री गङ्गाधर	गत कलि संवत् ४१२७ तुल्य ईसवी सन् १०२६।	१२ वर्ष
९१- श्री सदाशिव	गत कलि संवत् ४१४८ तुल्य ईसवी सन् १०४७।	२१ वर्ष
९२- श्री वामदेव	गत कलि संवत् ४१७० तुल्य ईसवी सन् १०६९।	२२ वर्ष
९३- श्री उपमन्यु	गत कलि संवत् ४१८५ तुल्य ईसवी सन् १०८४।	१५ वर्ष

९४- श्री हयग्रीव	गत कलि संवत् ४२०१ तुल्य ईसवी सन् ११००।	१६ वर्ष
९५- श्री हरि	गत कलि संवत् ४२१९ तुल्य ईसवी सन् १११८।	१८ वर्ष
९६- श्री रघूत्तम	गत कलि संवत् ४२३८ तुल्य ईसवी सन् ११३७।	१९ वर्ष
९७- श्री पुण्डरीकाक्ष	गत कलि संवत् ४२४५ तुल्य ईसवी सन् ११४४।	०७ वर्ष
९८- श्री पराशङ्करतीर्थ	गत कलि संवत् ४२६१ तुल्य ईसवी सन् ११६०।	१६ वर्ष
९९- श्री वेदगर्भ	गत कलि संवत् ४२७९ तुल्य ईसवी सन् ११७८।	१८ वर्ष
१००- श्री वेदान्तभास्कर	गत कलि संवत् ४२९९ तुल्य ईसवी सन् ११९८।	२० वर्ष
१०१- श्री विज्ञानात्मा	गत कलि संवत् ४३१९ तुल्य ईसवी सन् १२१८।	२० वर्ष
१०२- श्री शिवानन्द	गत कलि संवत् ४३४० तुल्य ईसवी सन् १२३९।	२१ वर्ष
१०३- श्री महेश्वर	गत कलि संवत् ४३६० तुल्य ईसवी सन् १२५९।	२० वर्ष
१०४- श्री रामकृष्ण	गत कलि संवत् ४३७९ तुल्य ईसवी सन् १२७८।	१९ वर्ष
१०५- श्री वृषध्वज	गत कलि संवत् ४३९३ तुल्य ईसवी सन् १२९२।	१४ वर्ष
१०६- श्री शुद्धबोध	गत कलि संवत् ४४०६ तुल्य ईसवी सन् १३०५।	१३ वर्ष
१०७- श्री सोमेश्वर	गत कलि संवत् ४४२६ तुल्य ईसवी सन् १३२५।	२० वर्ष
१०८- श्री गोपदेव	गत कलि संवत् ४४४७ तुल्य ईसवी सन् १३४६।	२१ वर्ष
१०९- श्री शंभुतीर्थ	गत कलि संवत् ४४६७ तुल्य ईसवी सन् १३६६।	२० वर्ष
११०- श्री भृगु	गत कलि संवत् ४४८० तुल्य ईसवी सन् १३७९।	१३ वर्ष
१११- श्री केशवानन्द	गत कलि संवत् ४४९२ तुल्य ईसवी सन् १३९१।	१२ वर्ष
११२- श्री विद्यानन्द	गत कलि संवत् ४५०६ तुल्य ईसवी सन् १४०५।	१४ वर्ष
११३- श्री वेदानन्द	गत कलि संवत् ४५२२ तुल्य ईसवी सन् १४२१।	१६ वर्ष
११४- श्री बोधानन्द	गत कलि संवत् ४५३७ तुल्य ईसवी सन् १४३६।	१५ वर्ष
११५- श्री सुतपानन्द	गत कलि संवत् ४५६१ तुल्य ईसवी सन् १४६०।	२४ वर्ष
११६- श्री श्रीधर	गत कलि संवत् ४५७२ तुल्य ईसवी सन् १४७१।	११ वर्ष
११७- श्री जनार्दन	गत कलि संवत् ४५९३ तुल्य ईसवी सन् १४९२।	२१ वर्ष
११८- श्री कामनाशनानन्द	गत कलि संवत् ४६०५ तुल्य ईसवी सन् १५०४।	१२ वर्ष
११९- श्री हरिहरानन्द	गत कलि संवत् ४६२१ तुल्य ईसवी सन् १५२०।	१६ वर्ष
१२०- श्री गोपाल	गत कलि संवत् ४६३६ तुल्य ईसवी सन् १५३५।	१५ वर्ष
१२१- श्री कृष्णानन्द	गत कलि संवत् ४६५२ तुल्य ईसवी सन् १५५१।	१६ वर्ष
१२२- श्री माधवानन्द	गत कलि संवत् ४६७३ तुल्य ईसवी सन् १५७२।	२१ वर्ष
१२३- श्री मधुसूदन	गत कलि संवत् ४६८६ तुल्य ईसवी सन् १५८५।	१३ वर्ष
१२४- श्री गोविन्द	गत कलि संवत् ४७०२ तुल्य ईसवी सन् १६०१।	१६ वर्ष
१२५- श्री रघूत्तम	गत कलि संवत् ४७२२ तुल्य ईसवी सन् १६२१।	२० वर्ष
१२६- श्री वामदेव	गत कलि संवत् ४७३७ तुल्य ईसवी सन् १६३६।	१५ वर्ष

१२७- श्री हृषीकेश	गत कलि संवत् ४७५० तुल्य ईसवी सन् १६४९।	१३ वर्ष
१२८- श्री दामोदर	गत कलि संवत् ४७७५ तुल्य ईसवी सन् १६७४।	२५ वर्ष
१२९- श्री गोपालानन्द	गत कलि संवत् ४७८७ तुल्य ईसवी सन् १६८६।	१२ वर्ष
१३०- श्री गोविन्द	गत कलि संवत् ४८०१ तुल्य ईसवी सन् १७००।	१४ वर्ष
१३१- श्री रघुनाथ	गत कलि संवत् ४८२० तुल्य ईसवी सन् १७१९।	१९ वर्ष
१३२- श्री रामचन्द्र	गत कलि संवत् ४८४१ तुल्य ईसवी सन् १७४०।	२१ वर्ष
१३३- श्री गोविन्द	गत कलि संवत् ४८५६ तुल्य ईसवी सन् १७५५।	१५ वर्ष
१३४- श्री रघुनाथ	गत कलि संवत् ४८७१ तुल्य ईसवी सन् १७७०।	१५ वर्ष
१३५- श्री रामकृष्ण	गत कलि संवत् ४८९२ तुल्य ईसवी सन् १७९१।	२१ वर्ष
१३६- श्री मधुसूदन	गत कलि संवत् ४९०५ तुल्य ईसवी सन् १८०४।	१३ वर्ष
१३७- श्री दामोदर	गत कलि संवत् ४९२८ तुल्य ईसवी सन् १८२७।	२३ वर्ष
१३८- श्री रघूत्तम	गत कलि संवत् ४९५० तुल्य ईसवी सन् १८४९।	२२ वर्ष
१३९- श्री शिव	गत कलि संवत् ४९७१ तुल्य ईसवी सन् १८७०।	२१ वर्ष
१४०- श्री लोकनाथ	गत कलि संवत् ४९८४ तुल्य ईसवी सन् १८८३।	१३ वर्ष
१४१- श्री दामोदरतीर्थ	गत कलि संवत् ४९९९ तुल्य ईसवी सन् १८९८।	१५ वर्ष
१४२- श्री मधुसूदनतीर्थ	गत कलि संवत् ५०२७ तुल्य ईसवी सन् १९२६।	२८ वर्ष
१४३- श्री भारतीकृष्णतीर्थ	गत कलि संवत् ५०६१ तुल्य ईसवी सन् १९६०।	३४ वर्ष
१४४- श्री निरंजनदेवतीर्थ	गत कलि संवत् ५०९३ तुल्य ईसवी सन् १९९२।	२८ वर्ष
१४५- श्री निश्चलानन्द सरस्वती		अब तक वर्तमान

टिप्पणी - १ श्री भारती कृष्ण तीर्थ के ब्रह्मलीन होने के पश्चात् ३० जून १९६४ तक शारदापीठ-द्वारका के ७७ वें आचार्य श्री अभिनव सच्चिदानन्द तीर्थ ब्रह्मलीन आचार्य की इच्छानुसार गोर्वद्धन-मठ को भी संभालते रहे। बाद में योग्य उत्तराधिकारी की खोज हो जाने पर तथा ब्रह्मलीन आचार्य के अन्तिम इच्छा पत्र के आधार पर उन्होंने १ जुलाई १९६४ ई. को इस पीठ पर श्री निरंजनदेवतीर्थ का अभिषेक कर दिया था।

- २ अनन्त श्री विभूषित जगद्गुरु शङ्कराचार्य निश्चलानंद सरस्वती जी का अभिषेक ब्रह्मलीन निरंजनदेवतीर्थ के द्वारा ९ फरवरी १९९२ ई. सन् में किया गया । तब से अब तक महाराज श्री इस पीठ को सुशोभित कर रहे हैं ।

परिशिष्ट ५

ज्योतिष्पीठ-बदरिकाश्रम की आचार्य परम्परा

आचार्य नाम	कब तक	कितने वर्ष
१. श्री तोटकाचार्य		
२. श्री विजय		
३. श्री कृष्ण		
४. श्री कुमार		
५. श्री गरुड़		
६. श्री शुक		
७. श्री विन्ध्य		
८. श्री विशाल		
९. श्री बकुल		
१०. श्री वामन		
११. श्री सुन्दर		
१२. श्री अरुण		
१३. श्री निवास		
१४. श्री आनन्द (=सुखानन्द)		
१५. श्री विद्यानन्द		
१६. श्री शिव		
१७. श्री गिरि		
१८. श्री विद्याधर		
१९. श्री गुणानन्द		
२०. श्री नारायण		
२१. श्री उमापति		
२२. श्री बालकृष्ण स्वामी	विक्रम संवत् १५५७ = ईसवी सन् १५००	५७ वर्ष
२३. श्री हरिब्रह्म स्वामी	विक्रम संवत् १५५८ = ईसवी सन् १५०१	०१ वर्ष
२४. श्री हरिस्मरण	विक्रम संवत् १५६६ = ईसवी सन् १५०९	०८ वर्ष

२५. श्री वृन्दावन स्वामी	विक्रम संवत् १५६८ = ईसवी सन् १५११	०२ वर्ष
२६. श्री अनन्त नारायण	विक्रम संवत् १५६९ = ईसवी सन् १५१२	०१ वर्ष
२७. श्री भवानन्द	विक्रम संवत् १५८३ = ईसवी सन् १५२६	१४ वर्ष
२८. श्री कृष्णानन्द स्वामी	विक्रम संवत् १५९३ = ईसवी सन् १५३६	१० वर्ष
२९. श्री हरिनारायण	विक्रम संवत् १६०१ = ईसवी सन् १५४४	०८ वर्ष
३०. श्री ब्रह्मानन्द	विक्रम संवत् १६२१ = ईसवी सन् १५६४	२० वर्ष
३१. श्री देवानन्द	विक्रम संवत् १६३६ = ईसवी सन् १५७९	१५ वर्ष
३२. श्री रघुनाथ	विक्रम संवत् १६६१ = ईसवी सन् १६०४	२५ वर्ष
३३. श्री पूर्णदेव	विक्रम संवत् १६८७ = ईसवी सन् १६३०	२६ वर्ष
३४. श्री कृष्णदेव	विक्रम संवत् १६९६ = ईसवी सन् १६३९	०९ वर्ष
३५. श्री शिवानन्द	विक्रम संवत् १७०३ = ईसवी सन् १६४६	०७ वर्ष
३६. श्री बालकृष्ण	विक्रम संवत् १७१७ = ईसवी सन् १६६०	१४ वर्ष
३७. श्री नारायणउपेन्द्र	विक्रम संवत् १७५० = ईसवी सन् १६९३	३३ वर्ष
३८. श्री हरिश्चन्द्र	विक्रम संवत् १७६३ = ईसवी सन् १७०६	१३ वर्ष

३९. श्री सदानन्द	विक्रम संवत् १७७३ = ईसवी सन् १७१६	१० वर्ष
४०. श्री केशवानन्द	विक्रम संवत् १७८१ = ईसवी सन् १७२४	०८ वर्ष
४१. श्री नारायण तीर्थ	विक्रम संवत् १८२३ = ईसवी सन् १७६६	४२ वर्ष
४२. श्री रामकृष्ण तीर्थ	विक्रम संवत् १८३३ = ईसवी सन् १७७६	१० वर्ष
४३. श्री टोकरानन्द		
४४. श्री पुरुषोत्तमानन्द		
४५. श्री कैलाशानन्द		
४६. श्री विश्वेश्वरानन्द		
४७. श्री अच्युतानन्द		
४८. श्री राजराजेश्वरानन्द	विक्रम संवत् १९५९ = ईसवी सन् १९०३	३० वर्ष
४९. श्री मधुसूदनानन्द	विक्रम संवत् १९६७ = ईसवी सन् १९११	०८ वर्ष
५०. श्री विजयानन्द	विक्रम संवत् १९९५ = ईसवी सन् १९३९	२८ वर्ष
५१. श्री अद्वैतानन्द	गु.विक्रम संवत् १९९७ =ईसवी सन् १९४१	०२ वर्ष
५२. श्री ब्रह्मानन्द सरस्वती	विक्रम संवत् २०१० = ईसवी सन् १९५३	१२ वर्ष
५३. श्री कृष्णबोधाश्रम	विक्रम संवत् २०३० = ईसवी सन् १९७३	२० वर्ष
५४. श्री स्वरूपानन्दसरस्वती		अब तक वर्तमान

टिप्पणी - १ क्रमांक ४३ से ५१ तक के आचार्य ज्योतिर्मठ के स्थानापन्न

मुख्यालय गुजरात प्रान्त के अहमदाबाद जनपद में अवस्थित धोलका मठ से अपने कृत्यों का निर्वहन करते रहे । इन आचार्यों का काल गुजराती विक्रम संवत् में दिया गया है । जो कि सामान्यतया भारत वर्ष के उत्तरी भाग में प्रयुक्त विक्रम संवत् से १ संख्या कम पड़ता है ।

२. श्री गुरुवंश पुराण (द्वितीय खण्ड) पृष्ठ ५१३-१४ पर श्रीमद्दण्डी स्वामी शिवबोधाश्रम महाराज ने लिखा है कि ब्रह्मसूत्र-शाङ्करभाष्य को आनन्दगिरि, भामती तथा रत्न प्रभा टीकाओं सहित वेंकटेश्वर प्रेस से दो भागों में प्रकाशित किया गया था । इसके प्रथम भाग की भूमिका के ४४ वें पृष्ठ पर उल्लिखित ज्योतिर्मठ के शंकराचार्यों की विरुदावली में श्रीमद् अच्युतानन्द तथा श्री राजराजेश्वरानन्द का नाम प्राप्त होता है ।

३. मन्त्र रहस्य ग्रन्थ के परिशिष्ट में ३ श्लोक ऐसे हैं जो बदरीनाथ क्षेत्र में अद्यावधि पढ़े जाते हैं ।

यथा-

तोटको विजयः कृष्णः कुमारो गरुड़ः शुकः ।
विन्ध्यो विशालो वकुलो वामनः सुन्दरोऽरुणः ।।१।।
श्री निवासः सुखानन्दो विद्यानन्दः शिवोगिरिः ।
विद्याधरो गुणानन्दो नारायण उमापतिः ।।२।।
एते ज्योतिर्मठाधीशाः आचार्यश्चिरजीविनः ।
य एतान् संस्मरेन्नित्यं योगसिद्धिं स विन्दतिः ।।३।।

उपर्युक्त श्लोको से स्पष्ट होता है कि ज्योतिष्पीठ के प्रथम २१ आचार्य दीर्घ जीवी तथा महान् योगी थे जिनके स्मरण मात्र से योग सिद्धि हो जाती है। राजा सुधन्वा की ताम्रपत्र-विज्ञप्ति में भी कहा गया है कि योगिजनों की बहुलता वाले क्षेत्र ज्योतिष्पीठ पर आचार्य शङ्कर ने तोटक को अभिषिक्त किया जिससे कि योग के द्वारा धर्म की इस क्षेत्र में रक्षा की जा सके । ऐसी स्थिति में इन आचार्यों का जीवन काल लगभग १२० वर्ष निश्चित प्रतीत होता है । उक्त श्लोक २ में 'सुखानन्दः' का पाठभेद 'स्वानन्दः' भी पाया जाता है ।

परिशिष्ट-६ (क)

श्री शृङ्गगिरि मठ की आचार्य परम्परा (अर्वाचीन)

१९६६ ई० में प्रकाशित 'महान् तपस्वी' ग्रन्थ की सूची के अनुसार-

आचार्य नाम	कब तक	कितने वर्ष
१. श्री सुरेश्वराचार्य		
२. श्री नित्यबोधघनाचार्य	शा. सं. ७७० = ई. सन् ८४८	७५ वर्ष
३. श्री ज्ञानघनाचार्य	शा. सं. ८३२ = ई. सन् ९१०	६२ वर्ष
४. श्री ज्ञानोत्तमाचार्य	शा. सं. ८७५ = ई. सन् ९५३	४३ वर्ष
५. श्री ज्ञानगिर्याचार्य	शा. सं. ९६० = ई. सन् १०३८	८५ वर्ष
६. श्री सिंहगिर्याचार्य	शा. सं. १०२० = ई. सन् १०९८	६० वर्ष
७. श्री ईश्वरतीर्थ	शा. सं. १०६८ = ई. सन् ११४६	४८ वर्ष
८. श्री नरसिंहतीर्थ	शा. सं. ११५० = ई. सन् १२२८	८२ वर्ष
९. श्री विद्याशंकरतीर्थ	शा. सं. १२५५ = ई. सन् १३३३	१०५ वर्ष
१०. श्री भारतीकृष्णतीर्थ	शा. सं. १३०२ = ई. सन् १३८०	४७ वर्ष
११. श्री विद्यारण्य	शा. सं. १३०८ = ई. सन् १३८६	०६ वर्ष
१२. श्री चन्द्रशेखरभारती (१)	शा. सं. १३११ = ई. सन् १३८९	०३ वर्ष
१३. श्री नरसिंहभारती (१)	शा. सं. १३३० = ई. सन् १४०८	१९ वर्ष

१४. श्री चन्द्रशेखरभारती(२)	मात्र कुछ दिन	०० वर्ष
१५. श्री पुरुषोत्तमभारती (१)	शा. सं. १३७० = ई. सन् १४४८	४० वर्ष
१६. श्री शंकरानन्दभारती	शा. सं. १३७६ = ई. सन् १४५४	०६ वर्ष
१७. श्री चन्द्रशेखरभारती(३)	शा. सं. १३८६ = ई. सन् १४६४	१० वर्ष
१८. श्री नरसिंहभारती(२)	शा. सं. १४०१ = ई. सन् १४७९	१५ वर्ष
१९. श्री पुरुषोत्तमभारती(२)	शा. सं. १४३९ = ई. सन् १५१७	३८ वर्ष
२०. श्री रामचन्द्र भारती	शा. सं. १४८२ = ई. सन् १५६०	४३ वर्ष
२१. श्री नरसिंहभारती(३)	शा. सं. १४९८ = ई. सन् १५७६	१६ वर्ष
२२. श्री नरसिंहभारती(४)	शा. सं. १५२१ = ई. सन् १५९९	२३ वर्ष
२३. श्री अभिनव नरसिंह भारती(१)	शा. सं. १५४४ = ई. सन् १६२२	२३ वर्ष
२४. श्री सच्चिदानन्दभारती(१)	शा. सं. १५८५ = ई. सन् १६६३	४१ वर्ष
२५.श्री नरसिंहभारती(५)	शा. सं. १६२७ = ई. सन् १७०५	४२ वर्ष
२६. श्री सच्चिदानन्द भारती (२)	शा. सं. १६६३ = ई. सन् १७४१	३६ वर्ष
२७. श्री अभिनवसच्चिदानन्द भारती (१)	शा. सं. १६८९ = ई. सन् १७६७	२६ वर्ष
२८. श्री अभिनव नरसिंह भारती (२)	शा. सं. १६९२ = ई. सन् १७७०	०३ वर्ष

२९. श्री सच्चिदानन्द	शा. सं. १७३६ = ई. सन् १८१४	४४ वर्ष
३०. श्री अभिनव सच्चिदानन्द भारती (२)	शा. सं. १७३९ = ई. सन् १८१७	०३ वर्ष
३१. श्री नरसिंहभारती(६)	शा. सं. १८०१ = ई. सन् १८७९	६२ वर्ष
३२. श्री सच्चिदानन्द शिवाभिनव नरसिंहभारती	शा. सं. १८३४ = ई. सन् १९१२	३३ वर्ष
३३. श्री चन्द्रशेखर भारती (४)	शा. सं. १८७६ = ई. सन् १९५४	४२ वर्ष
३४. श्री अभिनव विद्यातीर्थ	शा. सं. १९११ = ई. सन् १९८९	३५ वर्ष
३५. श्री भारती तीर्थ		वर्तमान

स्रोत : १. गुरु वंश काव्यम्

२. महान तपस्वी (३२ वें आचार्य श्री सच्चिदानन्द शिवाभिनव नरसिंह भारती की आन्ध्र = तेलगू भाषा में लिखित जीवनी)

प्रकाशक - तल्लम सत्य नारायण जिस पर ३४ वें आचार्य श्री अभिनव विद्यातीर्थ का दिनांकित १५-५-६६ का आशीर्वचन मुद्रित है।

३. चल्ला लक्ष्मण शास्त्री - श्रृंगगिरि के शङ्कराचार्य के प्रतिनिधि से १९९८ में प्राप्त सूचना।

परिशिष्ट -६ (ख)

श्री शृङ्गगिरि पीठ की आचार्य परम्परा

मैसूर राज्य के पंडित धर्माधिकारी के अनुज श्री वेंकटाचल शर्मा द्वारा ईसवी सन् १९१४ में विरचित श्रीमच्छङ्कराचार्यचरित्रम् नामक ग्रन्थ में प्रकाशित सूची के अनुसार –

आचार्य नाम	सिद्धिकाल	सन्यासकाल
१. श्री सुरेश्वराचार्य	वि.सं. ६९५ माघ शुक्ल १२ संवत्सर प्रमाथी।	जन्म काल से ७२५ वर्ष आयु
२. श्री बोधघनाचार्य	शा. सं. ८८० भाद्र शुक्ल १३ संवत्सर विभव	२०० वर्ष
३. श्री ज्ञानघनाचार्य	शा. सं. ८३२ आषाढ़ कृष्ण ५ संवत्सर प्रमोद	६४ वर्ष
४. श्रीज्ञानोत्तमशिवाचार्य	शा. सं. ८७५ फाल्गुन शुक्ल ८ संवत्सर प्रमादी	४८ वर्ष
५. श्री ज्ञानगिर्याचार्य	शा. सं. ९६० श्रावण कृष्ण १० संवत्सर बहुधान्य	८९ वर्ष
६. श्री सिंहगिर्याचार्य	शा. सं. १०२० वैशाख कृष्ण ८ संवत्सर बहुधान्य	६२ वर्ष
७. श्री ईश्वर तीर्थ	शा. सं. १०६८ चैत्र शुक्ल १ संवत्सर अक्षय	४९ वर्ष
८. श्री नरसिंह तीर्थ	शा. सं. ११५० फाल्गुन शुक्ल ६ संवत्सर सर्वधारी	८३ वर्ष
९. श्री विद्यातीर्थ (विद्याशङ्कर)	शा. सं. १२५५ कार्तिक शुक्ल ७ संवत्सर श्रीमुख	१०५ वर्ष
१०. श्रीभारतीकृष्णतीर्थ	शा. सं. १३०२ भाद्र शुक्ल १२ संवत्सर रौद्र	५२ वर्ष
११. श्री विद्यारण्य	शा. सं. १३०८ चैत्र शुक्ल १३ संवत्सर अक्षय	५५ वर्ष

१२. श्रीचन्द्रशेखरभारती	शा. सं. १३११ वैशाख कृष्ण २ संवत्सर शुक्ल	२१ वर्ष
१३. श्रीनरसिंहभारती	शा. सं. १३३० पौष शुक्ल ८ संवत्सर सर्वधारी	२१ वर्ष
१४. श्रीपुरुषोत्तमभारती	शा. सं. १३७० श्रावण शुक्ल ११ संवत्सर विभव	४२ वर्ष
१५. श्रीशंकरानन्दभारती	शा. सं. १३७६ माघ शुक्ल ८ संवत्सर भाव	२६ वर्ष
१६. श्रीचन्द्रशेखरभारती	शा. सं. १३८६ मार्ग-कृष्ण ५ संवत्सर तारण	१५ वर्ष
१७. श्रीनरसिंहभारती	शा. सं. १४०१ आषाढ़ कृष्ण ५ संवत्सर विकारी	१५ वर्ष
१८. श्रीपुरुषोत्तमभारती	शा. सं. १४३९ ज्येष्ठ कृष्ण १३ संवत्सर ईश्वर	४५ वर्ष
१९. श्रीरामचन्द्रभारती	शा. सं. १४८२ पौष कृ.८ संवत्सर रौद्र	५२ वर्ष
२०. श्री नरसिंहभारती	शा. सं.१४९५ आषाढ़ कृष्ण ४ संवत्सर श्रीमुख	१६ वर्ष
२१. श्री नरसिंहभारती	शा. सं. १४९८ चैत्र शुक्ल ११ संवत्सर धाता	१३ वर्ष
२२. श्री इम्मडि नरसिंहभारती	शा. स. १५२१ भाद्र कृष्ण २ संवत्सर विकारी	२३ वर्ष
२३. श्री अभिनव नरसिंहभारती	शा. सं. १५४४ फाल्गुन कृष्ण ७ संवत्सर दुन्दुभि	२३ वर्ष
२४. श्री सच्चिदानन्द भारती	शा. सं. १५८५ आषाढ़ कृष्ण ५ संवत्सर शोभकृत्	४१ वर्ष
२५. श्री नरसिंहभारती	शा. सं. १६२७ फाल्गुन कृष्ण ६ संवत्सर पार्थिव	४२ वर्ष

२६. श्री सच्चिदानन्द भारती	शा. सं. १६६३ ज्येष्ठ शुक्ल १० संवत्सर दुर्मति	३६ वर्ष
२७. श्री अभिनव सच्चिदानन्द	शा. सं. १६८९ मार्गशुक्ल ६ संवत्सर सर्वजित्	२६ वर्ष
२८. श्री नृसिंहभारती	शा.सं.१६९२फाल्गुन कृष्ण ५या.भाद्र शुक्ल११ संवत्सर विकृति	०३ वर्ष
२९. श्री सच्चिदानन्द भारती	शा. सं. १७३५ अधि. भाद्र शुक्ल १ संवत्सर भाव	४३ वर्ष
३०. श्री अभिनव सच्चिदानन्द	शा. सं. १७३९ फाल्गुन कृष्ण ६ संवत्सर ईश्वर	०४ वर्ष
३१. श्री नरसिंहभारती	शा. सं. १८०१ ज्येष्ठ शुक्ल २ संवत्सर प्रमाथी	६२ वर्ष
३२. श्री सच्चिदानन्दशिवाभिनव विद्यानरसिंहभारती		
३३. श्री चन्द्रशेखर भारती		

टिप्पणी :

१. श्री शङ्कराचार्यादि गुरु परम्परा ग्रन्थ में 'सुरेश्वराचार्य' के स्थान पर विश्वरूपाचार्य नाम प्राप्त होता है।

२. श्रीरंग से मुद्रापित श्रृंगेरीमठीय गुरुपरम्परा स्तोत्र में 'शंकरानन्द' के स्थान पर 'शंकर' नाम प्राप्त होता है।

३. मैसूर महाराजकृत अष्टोत्तरशताख्य ग्रन्थ में इम्मडिनरसिंह भारती का नाम नहीं है।

परिशिष्ट–६ (ग)

शृङ्गेरी मठ की आचार्य परम्परा

विक्रम संवत् १९५३ (=ई.स. १८९७) में निर्णय सागर प्रेस बम्बई (सम्प्रति मुम्बई) से प्रकाशित पंचदशी की पीताम्बर कृत व्रजभाषा टीका की भूमिका में प्रकाशित सूची के अनुसार –

आचार्य नाम	आचार्यत्व समापन वर्ष	पीठासीन काल
१. श्री पृथ्वीधराचार्य	शा. सं. ३७ तुल्य ई. सन् ११५	६५ वर्ष
२. श्री विश्वरूप भारती	शा. सं. ११२ तुल्य ई. सन् १९०	७५ वर्ष
३. श्री चिद्रूप भारती	शा. सं. १६४ तुल्य ई. सन् २४२	५२ वर्ष
४. श्री गंगाधर भारती	शा. सं. २३४ तुल्य ई. सन् ३१२	७० वर्ष
५. श्री चिद्घन भारती	शा. सं. २८९ तुल्य ई. सन् ३६७	५५ वर्ष
६. श्री बोधज्ञ भारती	शा. सं. ३३५ तुल्य ई. सन् ४१३	४६ वर्ष
७. श्री ज्ञानोत्तम भारती	शा. सं. ३८० तुल्य ई. सन् ४५८	४५ वर्ष
८. श्री शिवानन्द भारती	शा. सं. ४२० तुल्य ई. सन् ४९८	४० वर्ष
९. श्री ज्ञानोत्तम भारती	शा. सं. ४५७ तुल्य ई. सन् ५३५	३७ वर्ष
१०. श्री नृसिंह भारती	शा. सं. ४९८ तुल्य ई. सन् ५७६	४१ वर्ष
११. श्री ईश्वर भारती	शा. सं. ५२८ तुल्य ई. सन् ६०६	३० वर्ष
१२. श्री नृसिंह भारती	शा. सं. ५५० तुल्य ई. सन् ६२८	२२ वर्ष
१३. श्री विद्याशंकरभारती	शा. सं. ५७८ तुल्य ई. सन् ६५६	२८ वर्ष
१४. श्री कृष्ण भारती	शा. सं. ५९८ तुल्य ई. सन् ६७६	२० वर्ष
१५. श्री शंकर भारती	शा. सं. ६२० तुल्य ई. सन् ६९८	२२ वर्ष
१६. श्री चन्द्रशेखर भारती	शा. सं. ६४४ तुल्य ई. सन् ७२२	२४ वर्ष
१७. श्री चिदानन्द भारती	शा. सं. ६६७ तुल्य ई. सन् ७४५	२३ वर्ष
१८. श्री ब्रह्मानन्द भारती	शा. सं. ६९५ तुल्य ई. सन् ७७३	२८ वर्ष
१९. श्री चिद्रूप भारती	शा. सं. ७२० तुल्य ई. सन् ७९८	२५ वर्ष
२०. श्री पुरुषोत्तम भारती	शा. सं. ७५५ तुल्य ई. सन् ८३३	३५ वर्ष

२१. श्री मधुसूदन भारती	शा. सं. ७९३ तुल्य ई. सन् ८७१	३८ वर्ष
२२. श्री जगन्नाथ भारती	शा. सं. ८२१ तुल्य ई. सन् ८९९	२८ वर्ष
२३. श्री विश्वानन्द भारती	शा. सं. ८५३ तुल्य ई. सन् ९३१	३२ वर्ष
२४. श्री विमलानन्द भारती	शा. सं. ८८८ तुल्य ई. सन् ९६६	३५ वर्ष
२५. श्री विद्यारण्य भारती	शा. सं. ९२८ तुल्य ई. सन् १००६	४० वर्ष
२६. श्री विश्वरूप भारती	शा. सं. ९४८ तुल्य ई. सन् १०२६	२० वर्ष
२७. श्री बोधज्ञ भारती	शा. सं. ९७४ तुल्य ई. सन् १०५२	२६ वर्ष
२८. श्री ज्ञानोत्तम भारती	शा. सं. १००४ तुल्य ई. सन् १०८२	३० वर्ष
२९. श्री ईश्वर भारती	शा. सं. १०५४ तुल्य ई. सन् ११३२	५० वर्ष
३०. श्री भारती तीर्थ	शा. सं. १०८९ तुल्य ई. सन् ११६७	३५ वर्ष
३१. श्री विद्यातीर्थ	शा. सं. ११२७ तुल्य ई. सन् १२०५	३८ वर्ष
३२. श्री विद्यारण्य भारती	शा. सं. ११६९ तुल्य ई. सन् १२४७	४२ वर्ष
३३. श्री नृसिंह भारती	शा. सं. ११९७ तुल्य ई. सन् १२७५	२८ वर्ष
३४. श्री चन्द्रशेखर भारती	शा. सं. १२२५ तुल्य ई. सन् १३०३	२८ वर्ष
३५. श्री मधुसूदन भारती	शा. सं. १२५५ तुल्य ई. सन् १३३३	३० वर्ष
३६. श्री विष्णु भारती	शा. सं. १२९० तुल्य ई. सन् १३६८	३५ वर्ष
३७. श्री गंगाधर भारती	शा. सं. १३२४ तुल्य ई. सन् १४०२	३४ वर्ष
३८. श्री नृसिंह भारती	शा. सं. १३५५ तुल्य ई. सन् १४३३	३१ वर्ष
३९. श्री शंकर भारती	शा. सं. १३८८ तुल्य ई. सन् १४६६	३३ वर्ष
४०. श्री पुरुषोत्तम भारती	शा. सं. १४३२ तुल्य ई. सन् १५१०	४४ वर्ष
४१. श्री रामचन्द्र भारती	शा. सं. १४६६ तुल्य ई. सन् १५४४	३४ वर्ष
४२. श्री नृसिंह भारती	शा. सं. १५०९ तुल्य ई. सन् १५८७	४३ वर्ष
४३. श्री विद्यारण्य भारती	शा. सं. १५४२ तुल्य ई. सन् १६२०	३३ वर्ष
४४. श्री नृसिंह भारती	शा. सं. १५६१ तुल्य ई. सन् १६३९	१९ वर्ष
४५. श्री शंकर भारती	शा. सं. १५८५ तुल्य ई. सन् १६६३	२४ वर्ष
४६. श्री नृसिंह भारती	शा. सं. १६०१ तुल्य ई. सन् १६७९	१६ वर्ष
४७. श्री शंकर भारती	शा. सं. १६२९ तुल्य ई. सन् १७०७	२८ वर्ष
४८. श्री नृसिंह भारती	शा. सं. १६५३ तुल्य ई. सन् १७३१	२४ वर्ष

४९. श्री शंकर भारती	शा. सं. १६८५ तुल्य ई. सन् १७६३	३२ वर्ष
५०. श्री नृसिंह भारती	शा. सं. १६९१ तुल्य ई. सन् १७६९	०६ वर्ष
५१. श्री शंकर भारती	शा. सं. १७२९ तुल्य ई. सन् १८०७	३८ वर्ष
५२. श्री नृसिंह भारती	शा. सं. १७४२ तुल्य ई. सन् १८२०	१३ वर्ष
५३. श्री शंकर भारती	शा. सं. १७७६ तुल्य ई. सन् १८५४	३४ वर्ष
५४. श्री नृसिंह भारती	शा. सं. १७८२ तुल्य ई. सन् १८६०	०६ वर्ष
५५. श्री शंकर भारती		

शुद्धि पत्र

क्र.	विवरण	अशुद्ध	शुद्ध
1.	प्रकाशकीय के प्रथम पृष्ठ के द्वितीय पैरा की तीसरी पंक्ति में	ग्रहण 2500वां	ग्रहण का2500वाँ
2.	प्रकाशकीय के द्वितीय पृष्ठ की छठवीं पंक्ति में	ऐकमत्य	ऐक्यमत
3.	कृतज्ञता ज्ञापन के पृष्ठ 1 के तीसरे पैरा की प्रथम पंक्ति	भमिका	भूमिका
4.	कृतज्ञता ज्ञापन के दूसरे पैरा की द्वितीय पंक्ति में	पुसतक	पुस्तक
5.	विषय प्रवेश के प्रथम पृष्ठ के तृतीय पैरा की 8वीं पंक्ति में	87-28	827-28
6.	विषय प्रवेश के द्वितीय पृष्ठ के अन्तिम पैरा की दूसरी पंक्ति में	जुडे	जुड़े
7.	पुस्तक के पृष्ठ 4 की तीसरी पंक्ति में (अभिलेखीय के पूर्व 0 का चिह्न लगाना है)	अभिलेखीय	0 अभिलेखीय
8.	पुस्तक के पृष्ठ 9 उत्तरपक्ष शीर्षक के नीचे की दूसरी पंक्ति में	विक्रम शासन	विक्रम के शासन
9.	पुस्तक के पृष्ठ 11 की सातवीं पंक्ति में	14 वां ई0पू0	14 वाँ वर्ष ई0पू0
	तथा अन्तिम पैरा की 11वीं पक्ति में	लेखन में	लेखन से
10.	पुस्तक के पृष्ठ 12 में पूर्वपक्ष शीर्षक के नीचे प्रथम पंक्ति (आरम्भ में 0 का चिन्ह लगाना है)	श्रृङ्गगिरि	0 श्रृङ्गगिरि
	तथा चौथी पंक्ति में	उत्तरपक्षी मत	उत्तरपक्षी के मत
11.	पुस्तक के पृष्ठ 13 की चौथी पंक्ति में	1024	1026
	तथा पाचवीं पंक्ति में	473	475
12.	पुस्तक के पृष्ठ 14 के तृतीय पैरा की चौथी पंक्ति में	491	421
13.	पुस्तक के पृष्ठ 15 में पूर्वपक्ष शीर्षक के नीचे की प्रथम पंक्ति में (आरम्भ में 0 का चिन्ह लगाना है)	ईसवी सन्	0 ईसवी सन्
14.	पुस्तक के पृष्ठ 16 में पूर्वपक्ष शीर्षक के नीचे की प्रथम पंक्ति (में आरम्भ में0का चिन्ह लगाना है)	कम्बोज	0 कम्बोज

शुद्धि पत्र

क्रं.	विवरण	अशुद्ध	शुद्ध
15.	पुस्तक के पृष्ठ 17 में पूर्वपक्ष शीर्षक के नीचे की प्रथम पंक्ति में (आरम्भ में 0 का चिन्ह लगाना है)	हमें	0 हमें
16.	पुस्तक के पृष्ठ 26 में पूर्वपक्ष शीर्षक के नीचे की प्रथम पंक्ति में (आरम्भ में0का चिह्न लगाना है)	क्या	0क्या
17.	पुस्तक के पृष्ठ 28 में उत्तरपक्ष शीर्षक के नीचे की द्वितीय पंक्ति में (इनके पूर्व उसके ऊपर संदर्भ की सं0 69 लिखना है)	इन धर्मकीर्तिसागर घोष	[69]इन धर्मकीर्तिसागर घोष
18.	पुस्तक के पृष्ठ 29 में उत्तरपक्ष शीर्षक के नीचे की द्वितीय पंक्ति में (स्रोत सन्दर्भ संख्या 70 करनी है)	[69]श्रीमद्भागवतमहापुराण	[70]श्रीमद्भागवतमहापुराण
19.	पुस्तक के पृष्ठ34 की सातवी पंक्ति में	[96]यजुर्वेद तथा	[96]ऋग्वेद
	तथा 15 वीं पंक्ति में	श्रीमद्भगद्गीता	श्रीमद्भगवद्गीता
	एवम् 18वीं पंक्ति में	व्यक्ति चोरी	व्यक्ति पर चोरी
20.	पुस्तक के पृष्ठ 36 की प्रथम पंक्ति	[133]अविमारकम्	[133]मनुस्मृति
	तथा पूर्वपक्ष शीर्षक के नीचे की प्रथम पंक्ति में	योग दर्शन	0योग दर्शन
21.	पुस्तक के पृष्ठ 37 की 8वीं पंक्ति में	महापरिनिब्बा-सुत्त	महापरिनिब्बाण-सुत्त
22.	पुस्तक के पृष्ठ 40 की पूर्वपक्ष शीर्षक के नीचे की 19वीं पंक्ति में	पडेगा	पड़ेगा
23.	पुस्तक के पृष्ठ 44 की 7वीं पंक्ति में	सदी पहले	सदी के पहले
24.	पुस्तक के पृष्ठ 54 क्रमाङ्क 54 गोगादेव नाम के नीचे की प्रथम पंक्ति	1024	1026
	व तीसरी पंक्ति	चौदहवें	अन्तिम
25.	पुस्तक के पृष्ठ 61 के क्रमाङ्क 1 पर	सुरेश्वरचार्य	सुरेश्वराचार्य
26.	पुस्तक के पृष्ठ 65 टिप्पणी 3 की 5वीं पंक्ति	पडता	पड़ता
27.	पुस्तक के पृष्ठ 66 की द्वितीय पंक्ति में दो स्थान पर व 8वीं पंक्ति में एक स्थान पर	29	73
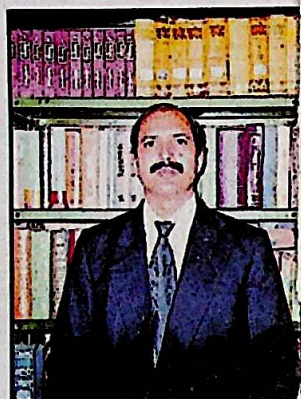
लेखक श्री परमेश्वर नाथ मिश्र का जन्म मार्गशीर्ष शुक्ल 6 संवत् 2016 में तत्कालीन वाराणसी जनपद के गोपीगंज थानान्तर्गत वराहीपुर ग्राम में शाण्डिल्य गोत्रीय मिश्र वंश मे श्री विश्वनाथ मिश्र एवं श्रीमती शारदादेवी मिश्र नामक पिता-माता के गृह में हुआ था। प्रयाग विश्वविद्यालय तथा कलकत्ता विश्वविद्यालय से उच्च शिक्षाएं प्राप्त करने के पश्चात्-इन्होंने कलकत्ता उच्चन्यायालय में अधिवक्ता के रूप में कर्मक्षेत्र में पदार्पण किया सम्प्रति कलकत्ता उच्चन्यायालय के अतिरिक्त उच्चतम-न्यायालय भारत में भी अधिवक्ता के रूप में विधि व्यवसाय में संलग्न हैं।

धर्म, दर्शन, इतिहास का आपने गहन अध्ययन किया है। आपके पास विधि सम्बन्धी पुस्तकों के पुस्तकालय के अतिरिक्त धर्म, दर्शन, इतिहास एवं राजनीतिशास्त्र से सम्बन्धित पुस्तकों का एक विशाल ग्रन्थागार है जिसमें इन विषयों से सम्बन्धित कई सहस्र पुस्तकें एवं प्राचीन दुर्लभ ग्रन्थ समाहित हैं।

इस पुस्तक को पढ़कर आप अनुभव करेंगे कि श्री [illegible] जी का विषयगत चिन्तन कितना गहन, व्यापक एवं पाण्डित्यपू[illegible] है।

प्रकाशक